UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180589

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No. H83 V31H
Acc. No. GH 1990
वर्मा वृन्दावनलाल

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 V31H   Accession No. G H 1990

Author वर्मा वृन्दावनलाल

Title हंस - मयूर

This book should be returned on or before the date last marked below

हंस-मयूर

(ऐतिहासिक नाटक)

180589

वृन्दावनलाल वर्मा, एडवोकेट

(लेखक—झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कचनार, अचल मेरा कोई, मुसाहिबजू, गढ़-कुण्डार, विराटा की पद्मिनी, राखी की लाज, लगन, कुण्डली-चक्र, प्रेम की भेंट, आदि)

153

प्रथम संस्करण

'मयूर-प्रकाशन'
स्वाधीन प्रेस, झांसी।

मूल्य २।)

प्रकाशक—
सत्यदेव वर्मा बी. ए., एल-एल. बी.
मयूर-प्रकाशन, झाँसी।

प्रथमवार—१९४८

अनुवाद और चित्रपट-निर्माण के सर्वाधिकार
लेखक के अधीन है।

मूल्य २।) रुपया

मुद्रक—
द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश'
स्वाधीन प्रेस, झांसी।

भूमिका

ऐतिहासिक उपन्यास अथवा नाटक लिखने में कई कठिनाइयां हैं जो सम्पूर्णतया काल्पनिक कथा के लिखने में नहीं होती हैं। इतिहास की बातों को बदलने का अधिकार लेखक को नहीं है। इतिहास के समय का ही उसे वर्णन करना होता है, उस काल के समाज और सार्वजनिक दशा से उसकी कल्पनाशक्ति नियंत्रित हो जाती है, उस समय के वेश और रहन सहन का उसे ज्ञान प्राप्त करना होता है। श्रीवृन्दावनलाल जी वर्मा ने विक्रमादित्य के काल से इस नाटक "हंसमयूर" का सम्बन्ध रक्खा है। लेखक ने नाटक के आरम्भ में बड़ी योग्यता से उस समय का परिचय दिया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस नाटक के लिखने से पूर्व कितना परिश्रम और अन्वेषण आवश्यक है। केवल ऐतिहासिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो भी नाटक आदर का पात्र है।

भरत ने अपने "नाट्यशास्त्र" में कहा है:

"लोकसिद्धं भवेत् सिद्धं नाट्यं लोक स्वभावजम्।
तस्मान्नाट्य प्रयोगे तु प्रमाणं लोक इष्यते॥"

इसी बात को अङ्ग्रेज़ी कवि Dryden ने कहा है "The drama's laws the drama's patrons give" प्राचीन शास्त्रकारों ने यह भी कहा है कि नाटक के ये अङ्ग हैं:—

अभिनय, प्रकृति, पाठ्य, छन्द, अलङ्कार, स्वर, संगीत। "हंस-मयूर" इन सबसे अलंकृत है। साहित्यिक दृष्टि से इसका चरित्र चित्रण दृढ़ और आकर्षक है। कथा में रोचकता है, पाठक को पढ़ने

में आनन्द मिलता है । साथ ही मेरा विश्वास है कि रंगमंच पर इसका अभिनय सफल होगा। अभिनय का सिद्धान्त भरत मुनि के शब्दों में यह है:—

"वयो ऽनुरूपः प्रथमस्तु वेषो
वेषा ऽनुरूपश्च गति प्रचारः।
गति प्रचारानुगतं च पाठ्यं
पाठ्यानुरूपो ऽभिनयश्च कार्यः ॥"

यदि इस नाटक का अभिनय कुशल पात्रों द्वारा हुआ तो इसके देखने वालों को एक अपूर्व झलक अतीत भारत की मिलेगी। एक और विलक्षणता इस नाटक में है जो पाठक और दर्शक हिन्दी के बहुत से और नाटकों में नहीं पायेंगे-वह है इसकी भाषा, जिसमें न तो गद्य काव्य का प्रयास किया गया है, और न कृत्रिमता आने पाई है । प्रसाद जी महाकवि थे, प्रेमचंद जी सफल उपन्यास लेखक थे परन्तु श्रीवृन्दावनलाल जी वर्मा उपन्यास और नाटक, दोनों कला में, अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

मेरी सम्मति में ऐसी उत्तम पुस्तक यदि विद्यार्थियों को पढ़ने को मिले, तो मनोरंजन के साथ साथ उनको भारतीय संस्कृति से भी परिचय होगा और उनको अच्छा उपदेश मिलेगा।

काशी विश्वविद्यालय
२५-९-४८

अमरनाथ झा

परिचय

हिन्दी में विक्रमादित्य के ऊपर जो नाटक अबतक लिखे गए हैं, उनमें आधुनिकतम ऐतिहासिक अनुसन्धानों का बहुत कम उपयोग किया गया है। और चित्रपटों की तो बात ही निराली है। [एक बार 'विक्रमादित्य' चित्रपट (फ़िल्म) को देखकर तो मनमें बहुत ही ग्लानि हुई थी। यह चित्रपट उस समय के इतिहास और तत्कालीन अवस्था का विपर्यय मात्र था। नाटकों और कहानियों में तो कुछ है भी, चित्रपट तो अनर्गल ही था। विक्रम सम्वत और विक्रमादित्य के सम्बन्ध का पुराना ऐतिहासिक मत चन्द्रगुप्त द्वितीय में अपना स्रोत बहुत समय तक पाता रहा। परन्तु शिलालेखों और सिक्कों से यह मत बिलकुल निराधार प्रमाणित हुआ है। अब यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि विक्रम सम्वत ईसा से ५७ वर्ष पूर्व ही स्थापित हुआ था और मालवगणतन्त्र की पुनः स्थापना के उपलक्ष में इसका प्रचलन किया गया था।

इस निर्धार पर पहुचने के लिए चार शिलालेख मिले हैं। पहला सं० २०२ का है, दूसरा सं० ४२८ का, तीसरा सं० ४६१ का, और चौथा सं० ४९३ का। यही समय गुप्त सम्राटों के उद्भव और विकास का भी है। इनमें से किसी भी शिलालेख में किसी भी गुप्त सम्राट की कीर्ति या नाम का उल्लेख नहीं है। विक्रम शब्द का भी कोई उपयोग नहीं है। पहला लेख उदयपूर राज्य में, नादसा में, एक यूप पर है। वह इस प्रकार है:—

कृतयोर्द्वयो वर्षशतयो द्व्यशीतयोः चैत्र पूर्णमास्याम।

कृतके २०२ वर्ष उपरान्त की चैत्र पूर्णिमा में। दूसरा शिलालेख भरतपूर राज्य में प्राप्त हुआ है:—

कृतेषु चतुर्षु वर्ष शतेष्वष्टा विंशेषु।

कृतके ४२८ वें वर्ष में।

तीसरा मन्दसोर में प्राप्त:—

श्री मालवगण म्नाते प्रशस्ते कृत संज्ञते
एक षष्ट्यधिके प्राप्ते समासत चतुष्ठये।

इसमें मालवगण और कृत को संयुक्त कर दिया गया है। एक प्रकार से दोनों को एक दूसरे का पर्याय सा बना दिया है। मालवगण या कृत नाम से विख्यात ४६१ वें वर्ष में चौथा शिलालेख भी मन्दसोर से मिला है:—

मालवानां गणस्थित्या याते शत चतुष्ठये,
त्रिनवत्यधिके ऽब्दानां ऋतौ से व्य घनस्तने।

मालवगण की स्थापना से ४९३ वें वर्ष में।

मालवों का गणतन्त्र बहुत प्राचीन था। इसका उल्लेख मैगास्थनीज़ (Megasthenese) ने अपने भारत-वर्णन में किया है। मैगास्थनीज़ की पूरी पुस्तक लुप्त हो गई है, परन्तु उसको अन्य यूनानी (ग्रीक) लेखकों ने उद्धृत किया है। इन उद्धरणों का संकलन पटना कॉलेज के प्रिन्सिपल मैकक्रिन्डल ने अपनी अंग्रेज़ी पुस्तक (Megasthenese Indika) में किया है। उसमें तत्कालीन भारतीय समाज का एक खासा चित्र मिलता है। इन मालवों ने सिकन्दर के दांत खट्टे किए थे। मालवों और यौधेयों के सम्मिलित निरोध के सामने सिकन्दर को झुकना और लौट जाना पड़ा था।

सिकन्दर के चले जाने के उपरान्त मौर्यों के शासनकाल में भारत को, बहुत समय तक, शान्ति-सुख मिलता रहा। मौर्यों की सत्ता के क्षीण हो जाने के काल में शकों, हूणों इत्यादि ने उत्तर-पश्चिम से टिड्डी दल की भांति आक्रमण किए और उन्होंने भारतीय संस्कृति को झकझोर डाला। मौर्यों के उत्तराधिकारी शुङ्गों ने, मध्यदेश के यवनों और उत्तर में आए हुए

शक–हूणों का दमन करने के उपाय किए, परन्तु इन आक्रमणकारियों का प्रवाह थोड़ा ही अवरुद्ध हो पाया। धार्मिक विवादों से उत्पन्न कलहों ने समाज को बहुत अस्त व्यस्त और निर्बल कर दिया था। अनेक भारतीय बौद्ध शक–हूणों को आक्रमण के लिए निमन्त्रण देते रहते थे। कुछ कारण भी था। एक शुङ्ग राजा ने सांची के कुछ बौद्ध स्तूपों को तुड़वा दिया था! विदेशी बौद्धों ने शैव और वैष्णव मन्दिरों को भग्न किया था!! शकों और हूणों के धर्म का यह हाल था कि जहां जाते वहीं के धर्म के बाहरी रंग रूप में रंग जाते, परन्तु बर्बरता उनकी अक्षुण्ण रहती थी। उनके सिक्कों पर यूनानी, ईरानी, बौद्ध, शैव और वैष्णव मतों की खिचड़ी अंकित है! एक ओर कोई यूनानी देवता दूसरी ओर कोई भारतीय!

उस समय भारत में गणतन्त्र, राजन्य, राजा और एकाधिकारी नरेश तक थे। प्रधान गणतन्त्र, मालवों, यौधेयों, आरकों, उत्तमभद्रों इत्यादि के थे। जनसत्ता–नियन्त्रित राजन्य और राजा, विदिशा, कोशल इत्यादि में और एकाधिकारी नरेश आन्ध्र, पाटलिपुत्र इत्यादि में। मंडलेश्वरता की ओर राजनीति अनिवार्य रूप से अग्रसर हो रही थी। गणतन्त्रों में वाद–विवाद इतना बढ़ जाता था कि काम निबट ही नहीं पाता था; कभी कभी वितण्डावाद इतना हो पड़ता था कि बिना कुछ किए धरे ही सभा भंग हो जाती थी। यौधेयों और मालवों का मेल था, परन्तु उत्तमभद्रों से इनकी शत्रुता थी। यौधेय नाम अब जोहियावार नामक राजपूतों में रह गया है, जो बहवावलपूर और बीकानेर रियासतों के आस पास रहते हैं। उत्तमभद्रों के अवशेष भदौरिया ठाकुर जान पड़ते हैं। मालवों का पर्याय 'मल्ल' अब जयपूर, जोधपूर, इत्यादि के मारवाड़ी कहलाने वाले व्यापारियों के नाम भर के साथ रह गया है!

गणतन्त्रों में धर्म सम्बन्धी कलह के अतिरिक्त तीव्र राजनैतिक मत-भेदों के कारण भी बहुत फूट रहती थी। शक इत्यादि बर्बर जातियां भारत

में थोड़ी बहुत संख्या में तो ईसा से लगभग छः सौ वर्ष पूर्व से आ रही थीं, परन्तु उनको भारतीय समाज अपनी वर्ण व्यवस्था में सोखता रहता था। ईसा से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व से लगभग पचहत्तर वर्ष पूर्व के काल में उनके असंख्य प्रवाह विविध मार्गों से आए। जान पड़ता था कि आर्य संस्कृति डूबी और अब डूबी। आर्य संस्कृति में भूमि, जन और जनसंस्कृति के समुच्चय को राष्ट्र कहते थे। ये तीनों महा संकट में पड़ गए। भारत में युद्ध तो कहीं न कहीं सदा ही होते रहते थे परन्तु कृषक की भूमि, शान्ति, गाय और आस्था को कोई भी रौंद डालने की कल्पना तक न करता था। शिल्पी को भी कोई नहीं छूता था। व्यक्ति की स्वाधीनता इतनी थी कि मनचाहे देवता को अपनी श्रद्धा और भक्ति भेंट करता रहे—'इष्टदेव' की संज्ञा बनी ही इसी कारण होगी। शासन, चाहे गणतन्त्रीय हो चाहे अन्य प्रकार का हो, जन–जीवन में हस्ताक्षेप बहुत कम करता था। चीनी यात्री फ़ाहियान जो इस काल के कई शताब्दियों पीछे भारत में आया, कहता है--कि भारत में दास प्रथा नहीं थी। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि चाण्डाल इत्यादि अन्त्यज या अछूतों को नगरों और ग्रामों के बाहर रहना पड़ता था। आर्य संस्कृति में ग्राह्य के साथ साथ बहुत सा अग्राह्य भी वर्तमान था। शकों, हूणों इत्यादि ने सभी प्रकार की आर्य संस्थाओं पर घोर आक्रमण किया। ग्राह्य और अग्राह्य, दोनों पर।

भारत भर में हल के नीचे की सम्पूर्ण भूमि का स्वामी कृषक ही होता था और शेष का अधिकार ग्राम के हाथ में (H. S. Maine की पुस्तक Village Communities in East & West पृष्ठ १०४–१०५) किसान भूमि से बेदखल बहुत ही कम किया जाता था। (उसी पुस्तक का पृष्ठ १८६) शकों ने भूमि का स्वामी अपने 'शाह' 'शाहानुशाह' (राजा) को घोषित किया। किसी से बेगार नहीं ली जा सकती थी। शकों ने बेगार की प्रथा

चलाई जो आगे चलकर मध्यकाल के सामन्त—युग में फिर पनपी और मुसलमान—युग में फूली फली! शकों ने मन्दिर तोड़े; सुन्दर मूर्तियां खंडित कीं; गाव के गांव भस्मीभूत किए; गो ब्राह्मणां का वध किया; विराट रूप में जन—संहार किया; दास बनाए; स्त्रियों बालकों की हत्या की और बड़ी संख्या में उनको अपना दास बनाया (स्त्रीबालगो द्विज प्राश्च परदार धनाहृता:)

शकों में बहुत से शैव, बौद्ध, और जैन मतधारी भी हो गए थे, परन्तु उनकी जन—पीड़न की वासना नहीं मिटी बहुत से यवन भी (ग्रीक) जैन हो गए थे—जैसे विन्ध्यशक्ति—यवन, आन्ध्र—यवन, परन्तु वे भी आर्य संस्कृति में अभी पूर्णतया संश्लिष्ट नहीं हो पाए थे।

जनतन्त्रों की टूट फूट में से राजन्य हुआ राजा—क्रमशः जनाधिप या नरेश। हिन्दू समाज जितना जितना जर्जर और निर्बल होता चला गया, उतने ही राजा सबल और वंश क्रमाधिकारी होते चले गए। विलासी भी। इनमें से कुछ आदर्श पालक और दृढ़ भी थे परन्तु सत्ता—प्रस्तार के मोह में परस्पर युद्ध भी करते रहते थे। इसलिए एकछत्रधारी सम्राट की आवश्यकता उस बिखरे हुए समाज को अवगत होने लगी।

अस्त व्यस्त और निर्बल समाज को व्यवस्थित, त्याग—भावना—रत और अप्रतिवार्य बनाने के लिए एक विशेष विचारधारा की आवश्यकता थी। बौद्ध धर्म से तत्कालीन समस्या के लिए यह नहीं मिल पा रही थी। इसलिए शैव मत का वह रूप उन्नत हुआ जिसमें त्याग, तपस्या और संकट को नष्ट करने की प्रेरणा थी, ऐसे नायकों का उद्भव हुआ जिनका इष्टदेव किसी से कुछ चाहता नहीं और जो देता सबको है प्रचुर वरदान; जिसका आवरण केवल भस्म है, चमत्कार के आडम्बरों से जिसको घृणा है और जो अपने भक्तों के शत्रुओं का कचूमर निकालने में एक क्षण का भी विलम्ब नहीं करता। ईस्वी सन के सौ या डेढ़ सौ वर्ष पीछे

वाकाटक और नाग इसी विश्वास और परम्परा से पुष्ट होकर भारतीय राजनीति में अपनी विशालता लेकर आए। उस समय पुनः आए हुए शकों और हूणों की बर्बरता का उन्होंने विध्वन्स किया और आर्य संस्कृति को पुनः स्थापित करके सन्यास में विलीन हो गए; अपने लिए कुछ नहीं चाहा और न अपने वंश के राज्य स्थापित करने के मुग्ध-प्रयास किए। वे लोग इस सिद्धान्त को पूर्णतया मानते थेः—

'सम्यक् प्रजापालनमात्र अधिगत राज्य प्रयोजनस्य'

पूर्ण रूप से प्रजा का पालन मात्र ही राज्य प्राप्ति का प्रयोजन हो सकता है। परन्तु पीछे तो ऐसे लोग हुए—

सर्वेंयत्र प्रणेतारः सर्वे पंडित मानिनः
सर्वे महत्व मिच्छन्ति तद् वृंदंह्या शुनश्यन्ति।

जहां सबके सब नेता बन गए हों, सब पांडित्य का अभिमान करने वाले, सबके सब महत्वाकांक्षी। वहां वे समूह का नाश कर डालते हैं।

इस मत के भीतर शत्रु—विनाश की जो उत्प्रेरणा थी वह साधारण जन के आत्म निग्रहों को यथास्थित न रख सकी और उसने बर्बरता तथा बीभत्स को समाज में उत्पन्न कर दिया। यह बात उस समय के लिए और भी अधिक लागू है जब ईसा के लगभग सौ वर्ष पूर्व शक इत्यादि बर्बरों ने बहुत बड़ी संख्या में प्रचण्डवेग के साथ निरन्तर आक्रमण किए और इस देश पर अपनी क्रूरताओं को बरसाया। इसकी प्रतिक्रिया हुई। उस प्रतिक्रिया का परिणाम कापालिक सदृश मतों का सृजन और विकास हुआ और उनमें शकों से भी बढ़कर क्रूरता ने जन्म लिया। आचार्य पुरन्दर ने ईसा से लगभग पचहत्तर वर्ष पूर्व शकों का दमन करने के लिए कापालिकों का संगठन किया था। आर्य संस्कृति अपने ही जन की बर्बरता से कांप उठी। उसी काल में हम उस वैष्णव धर्म का विकास और उत्थान देखते है जिसके इष्टदेव विष्णु—की चार भुजाएं हैं,

जिनकी गदेली में शंख, चक्र, गदा और पद्म हैं, रूप भी अत्यन्त मनोहर। संस्कृति की रक्षा के लिए शैव और वैष्णव– दोनों–मतों की धाराओं का सामन्जस्य और समन्वय हुआ। तत्कालीन वास्तु, स्थापत्य और चित्र कलाओं में स्त्रैणता अंशतः भी नहीं है। पूर्ण पुंसत्व कला, साहित्य, आचार और राजनीति में। चित्रकार सुन्दर, सुदृढ़ और बलिष्ठ शरीर वाले पुरुषों को अपनी कूँची से उतारता था, सचेत मन और प्रबल–संकल्प। साहित्यकार अपने शब्दों में उसको मूर्त करता था और शिल्पी उसको पत्थर में पक्के थमें हुए कुशल हाथों से उभार देता था। स्त्रियों के प्रतिबिम्बों का भी सृजन ऐसा ही किया गया। भाषा मधुर और गौरवमयी, कृत्रिमता कम, स्पष्ट और प्रभावपूर्ण, स्फुरणमयी। भारतीय जन में आत्म विश्वास उत्पन्न हो गया। विष्णु के प्रति उसकी प्रगाढ़ भक्ति ने बाहुओं में बल की बिजली दौड़ाई, विवेक को स्थिर रखा और उसने अपने बर्बर शत्रु को पछाड़ दिया। शैव शक्ति और वैष्णव मन्जुलता का समन्वय ईसा से पूर्व हो गया था। इस समन्वय ने मालवों, यौधेयों नागों इत्यादि को प्रेरणा और स्फूर्ति दी। शकों के ७५ वर्ष ईस्वी पूर्व, भयङ्कर उपद्रवों का सामना करने के लिए एक जनपद नायक विकसित हो चुका था। उसने मालव इत्यादि गणतन्त्रों का संगठन किया। आन्ध्रों काण्वों, और नागों का, उनके अपने अपने राजन्यों अथवा राजाओं के नेतृत्व में, सहयोग प्राप्त किया और शकों से टक्कर ली। ईसा से ५७ वर्ष पूर्व और विक्रम सम्वत के प्रारम्भ की यही गौरव-पूर्ण घटना है। 'हंस–मयूर' नाटक का यही कथानक है।

'प्रभावक चरित' नामक एक जैन ग्रन्थ है जो तेरहवीं शताब्दि में लिखा गया था, विक्रम सम्वत की स्थापना के लगभग बारह सौ तेरह सौ वर्ष पीछे। इस ग्रन्थ में उस समय का उज्जैनाधिपति गर्दभिल्ल बतलाया गया है। उसमें कहा गया है कि धारा नगरी के राजकुमार कालकाचार्य और राजकुमारी सरस्वती जैन धर्म प्रसार के लिए उज्जैन

गए तो गर्दभिल्ल ने सरस्वती को, जो बहुत सुन्दर थी, बल-पूर्वक पकड़ कर अपनी रानी बना लिया। कालकाचार्य क्रुद्ध होकर शकों की शरण में सिन्धुसौवीर और उसके सुदूर उत्तर में भी गया और शक आक्रमण-कारियों को लिवा लाया। शकों ने मालवतन्त्र को नष्ट करके उज्जैन पर अधिकार कर लिया! गर्दभिल्ल भाग गया और उसको किसी जङ्गल में सिंह ने पकड़ कर खालिया। मालव-विजय पर शकों के नायक उषवदात ने नासिक की गुफा में अपनी विजय को चिरस्मरणीय बनाने के लिए एक शिलालेख खुदवाया, जो इस प्रकार है:—

'गतोस्मि वर्षा-रतुं मालयेहि···हि···रुधं उत्तमभद्रं मोचयितुं तेच मालया प्रनादेनेव अपयाता उत्तमभद्रकानंच क्षत्रियानं सर्वे परिग्रहा कृता।'

आरम्भिक शकों का जैसा खिचड़ी-मेल धर्म था वैसी ही भाषा भी! एक ही लेख में संस्कृत और प्राकृत की खिचड़ी! उसका भावार्थ है, 'मैं वर्षा ऋतु की समाप्ति पर उत्तमभद्रों का उद्धार करने के लिए गया, जिनको मालवों ने [किसी गढ़ में] घेर रखा था। मालव मेरी हुंकार मात्र से भाग गए···!'

नासिक की ही एक गुफा में इसी उषवदात का दूसरा शिलालेख है जो उसने गुफा के भेंट करने के सम्बन्ध में खुदवाया था:—

'सिधं। वसे ४२ वेसाख मासे राज्ञो क्षहरातस क्षत्रपस नहपानस जामातारा दीनीक पुत्रेन उषवदातेन संघस चातुदिसस इमं लेणं।'

क्षहरात क्षत्रप नहपान के दामाद, दीनीक के पुत्र उषवदात ने संघ को यह गुफा लगाई। तेरह चौदह वर्ष तक उज्जैन पर शासन करते हुए शकों ने जो भयङ्कर अत्याचार जनपदों में किए, उससे यह धरा बिलबिला उठी। चतुर्थांश जनता को दास बना कर अपने देश में भेज दिया! किसानों की

भूमि छीनी, शिल्पियों का विनाश किया, कलाओं को भ्रष्ट, तथा नाना प्रकार की अवर्णनीय क्रूरताएं कीं—रक्त की तो नदियां ही बहा दीं। जैन या बौद्ध राजाओं के जहां जहाँ शासन थे वहां अहिंसा के प्रचार के लिए एक प्रकार की पुलिस रहती थी। यह पुलिस जनता को काफ़ी त्रास दिया करती थी। शकों ने बौद्ध या जैन धर्म का आवरण ओढ़ कर इस–अहिंसा विभाग की आँट में अश्रुतपूर्व भयानक अत्याचार और रक्तपात किए! जूं या खटमल को मारडालने के अपराध में अपराधी को प्राण दण्ड की व्यवस्था उन्हीं की सूझ थी जो आगे के भारतीय राजाओं ने उनसे परम्परा और उत्तराधिकार में प्राप्त की। बेगार, छोटे छोटे से अपराधों के लिए हाथ पैर कटवा देना सब शकों की देन है।

किसी महापुरुष के नेतृत्व में संगठित होकर जब आर्य जनपदों ने इन शकों का विध्वन्स करके संस्कृति की पुनः स्थापना की—इसी पुनः स्थापना का संदर्भ उदयपूर वाले शिला लेख में है—'**मालवानां---गण स्थित्या**···—' तब माना फिर से सतयुग आगया। बिलकुल सम्भव है उस महापुरुष का नाम या उपनाम कृत रहा हो जिसके नाम से विक्रम सम्वत का आरम्भ हुआ। उस महापुरुष ने, न तो, अपना कोई राज्य स्थापित किया और न कोई वंश। अपने अनेक महान पूर्वजों की भांति नाम की भी तनिक भी चिन्ता न करते हुए, वह भारतीय—गौरव--गगन में समा गया। यही कृत 'हंसमयूर' नाटक का इन्द्रसेन है। परन्तु आर्य–विजय की घटना का उल्लेख नासिक की ही गुफा में, मानो शकों के उस दम्भ का दमन करने के लिए जो उनके शिलालेख में उत्कीर्ण है, शातिकर्णि ने खुदवाया—

···सुविभत तिवगदेस कालस।
सक यवन पल्हव निसूदनस॥

धमोपर्जितकर विनियोग करस।
कितापरोधेपि सतुजन अपाणहिसा रुचिस॥
खखरात वंस निरवसेस करस।

भावार्थ—शकों, यवनों, पल्हवों, और जहरातों को ध्वस्त करके निर्वन्श कर दिया, परन्तु धर्म की सर्वाङ्गीण स्थापना की—और बड़े बड़े अपराधी शत्रु जनों तक को अभय और रक्षा दी! उनके साथ क्रूर बर्ताव नहीं किया, प्रत्युत उनको हिन्दू समाज और संस्कृति में सोख लिया।' नाटक में वर्णित पात्र पुरन्दर, रामचन्द्र नाग, नहपान, भूमक, उषवदात सब ऐतिहासिक हैं और उसी काल से सम्बन्ध रखते हैं। सरस्वती को सुनन्दा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वकुल कल्पित है, परन्तु उस समय के भारतीय यवनों का प्रतिबिम्ब है। उसी काल में या उसके लग-भग एक विलक्षण नर्तकी, अभिनेत्री और गायिका का अस्तित्व मिलता है। नर्मदा कांठे की गुफाओं में उसका नाम सुतनुका लिखा है। नर्मदा के भेड़ा घाट [भृगु घाट] पर दो बड़ी मूर्तियां पड़ी हुई हैं जो जान पड़ता है कि किसी शक कन्या ने बनवाई हैं। मैंने सुतनुका और उस शक कन्या का समन्वय 'हंसमयूर' की तन्वी में किया है। शकों की या यवनों की कन्याओं के साथ आर्यों का विवाह कोई नई बात न थी। नाटक की घटना के लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य ने सैल्यूकस ग्रीक की पुत्री के साथ विवाह सम्बन्ध किया था।

'हंसमयूर' नाटक में तत्कालीन वेशभूषा, वस्त्रों और अलङ्कारों का वर्णन किया गया है, यदि उनका विशेष विवरण जानना हो तो अन्यत्र भी मिल सकता है। कपड़ों, विशेष कर पैजामें के सम्बन्ध में सन्देह हो सकता है कि यह प्राचीन हिन्दुओं की वेश भूषा में नहीं था। मैं इस बात को नहीं मानता। अलबेरूनी जब ग्यारहवीं शताब्दि के आरम्भ में आया

था उसको भी भ्रम हुआ था। उसने अपने ग्रन्थ किताबुल हिन्द [अंग्रेजी अनुवाद के प्रथम खण्ड का पृष्ठ ९७] में लिखा है कि हिन्दू लोग मुसलमानों की तरह के कपड़े पहिनते हैं—साफ़ा बांधते हैं, इत्र मलते हैं, नाना प्रकार के रंगे कपड़ों से अपने शरीर को सजाते हैं और उनके पैजामें इतने लम्बे होते हैं कि एड़ी तक ढक जाती है!' [उसी खण्ड का पृष्ठ १८१] अजन्ता की गुफाओं में जो चित्र आज भी प्राप्त हैं उनमें बच्चे जांघिए पहिने हैं, और कुछ पुरुष पिंडलियों तक के आधे पैजामें और कुछ पूरे। जांघिए के लिए 'जंघ' शब्द वैदिक संस्कृत में है। अलबेरूनी ने अपने उस ग्रन्थ में हिन्दुओं के उन आचारों का भी वर्णन किया है जिनको भूमक ने इस नाटक में ६५ वें पृष्ठ पर प्रकट किया है। [पृष्ठ १८१ भाग १] अजन्ता की गुफाओं के चित्र अलबेरूनी के लेख से सैकड़ों वर्ष पहले बन चुके थे। पिंडलियों तक के 'टॉप बूटों' सदृश जूते और झिलम टोप खजुराहो के सूर्य मन्दिर [चित्रगुप्त मन्दिर] की शिलाओं पर आज भी उत्कीर्ण देखे जा सकते हैं। मैंने इसका विवरण 'हंसमयूर' में नहीं दिया है।

मैंने नाटक के अन्तिम अंक में चुनाव की परिपाटी का कुछ विवरण दिया है। उसका सविस्तार वर्णन डॉक्टर काशीप्रसाद जायसवाल की पुस्तक हिन्दूराज्य तन्त्र (Hindu polity) में मिलेगा। इसका अनुवाद हिन्दी में हो गया है। भारतीय संगीत का विकास ईसा से तीन सौ वर्ष पहले ही पर्याप्त रूप में हो चुका था। जिन रागों का उपयोग मैंने नाटक में किया है वे हमारी संस्कृति के इतिहास से असंगत नहीं हैं।

उस प्राचीन काल के समाज के रूप को रंगमंच पर लाने के लिए अभिनयकर्त्ताओं को थोड़ी सी सावधानी के साथ उसकाल के इतिहास की—विशेषकर कला के इतिहास की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

मैंने तत्कालीन भावों और वान्छाओं को नाटक में उतार लाने का प्रयत्न किया है, परन्तु नाटक दृश्य साहित्य है इसलिए नाटककार को अभिनय-कर्त्ताओं के कौशल का पूरा सहयोग चाहिए।

देश में ऐसे नाटकों की बड़ी आवश्यकता है जो पढ़े जाने योग्य तो हों ही, परन्तु मन्च के लिए भी उपयुक्त हों। उतनी ही आवश्यकता इस प्रकार के साहित्य की चित्रपट जगत के लिए भी है, जिसमें इतिहास और चरित्र चित्रण की नब्बे प्रतिशत उपेक्षा की जाती है। मैंने जब 'विक्रमादित्य' चित्रपट देखा तब मनमें इतनी ग्लानि हुई कि उसकी समानता उसी ग्लानि से की जा सकती है जो मुझको चन्द्रगुप्तमौर्य चित्रपट को देखने के कारण हुई थी। मैंने इन दोनों चित्रों की कठोर आलोचनाएँ पत्रों में प्रकाशित की। कदाचित ही किसी चित्रनिर्माता ने उन आलोचनाओं को पढ़ा हो, एक या आधे ने पढ़ा होगा तो मुझको एक चिनौती मिली—हम ऐतिहासिक चित्र बनाने में यदि इतिहास का नाश करते हैं तो आप ही एकाध नाटक लिखिए। उस चिनौती का उत्तर यह नाटक है। परन्तु मैं इस बात को मानता हूँ कि यह नाटक उनके लिए नहीं लिखा गया है, क्यों कि उन लोगों के स्टूडियो ऐसे नगरों में हैं जहां बड़े बड़े पुस्तकालय हैं और जिनमें इतिहास सम्बन्धी पुस्तकें पर्याप्त संख्या में हैं तथा विचित्रालय (Museum) भी। विचित्रालय तो सहज ही देखे जा सकते हैं, और चित्रनिर्माता उन्हें देखने का कष्ट भी करते हैं, परन्तु पुस्तकालय? पुस्तकालय में सिरखपी कौन करे? वे जानते हैं कि हमारी अधिकांश जनता को अपने इतिहास और पुरानी संस्कृति का यथेष्ट परिचय नहीं है। इसीलिए उस जनता के इस अज्ञान का वे लाभ उठाते हैं। परन्तु वह समय बहुत निकट है जब चित्रनिर्माता उस अज्ञान का सहज लाभ प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

मैंने 'हंस-मयूर' नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर 'प्रभावक चरित'

वर्णित कालकाचार्य कथानक का उपयोग किया है। जान पड़ता है ईसा से लगभग ७५ वर्ष पूर्व मालवगणतन्त्र की अव्यवस्था ने पहले राजन्य और फिर राजा को उत्पन्न किया। गर्दभिल्ल इसी प्रकार का राजन्य या राजा था। सरस्वती (नाटक की सुनन्दा) के साथ गर्दभिल्ल का बलात् विवाह मुझको मान्य नहीं है, परन्तु गर्दभिल्ल के प्रणय ने जो रूप या मार्ग लिया होगा उसके सम्बन्ध में कालकाचार्य को भ्रम होना स्वाभाविक और उसके स्वभाव के संगत जान पड़ता है। नाटक में इसी भ्रम का समर्थन है। कालकाचार्य ने अपने स्वभाव का जो परिचय नाटक के दूसरे दृश्य में दिया है वह इतिहास सम्मत है। (जायसवाल का 'हिन्दू राज्य तन्त्र' पृष्ट ५२) कालकाचार्य ने शकों को लाकर उज्जैन और मालव जनपद का नाश कराया, उसके लिए दो उपादान ग्राह्य हैं—एक तो उत्तमभद्रों और मालव-यौधेयों का वैर, जिसका संकेत उषवदात के नासिक गुफा वाले शिलालेख में है; दूसरा कालकाचार्य की प्रतिहिंसा, जो गर्दभिल्ल—सुनन्दा के प्रणय—भ्रम से उत्पन्न हुई थी। शकों की विजय के परिणाम को अपनी आंखों देखकर कालकाचार्य से फिर उज्जैन में न रहा गया और वह दक्षिण-पश्चिम में धर्म-प्रचार के लिए चला गया।

इस नाटक की भाषा मेरे अन्य नाटकों—और उपन्यासों—की अपेक्षा अधिक क्लिष्ट है। उस युग की माग के कारण मुझको ऐसी भाषा का उपयोग करना पड़ा। परन्तु हिन्दी की उत्तरोत्तर सर्व-प्रियता के समय में यह भाषा पाठकों—और दर्शकों को भी— समझ में आ जानी चाहिए।

श्यामसी
२१ ९ ४८

वृन्दावनलाल वर्मा

नाटक के पात्र

पुरुष—

गर्दभिल्ल—उज्जैन का राजा।

पुरन्दर—उज्जैन के कापालिकों का आचार्य

कालक—धारा नगरी का राजकुमार, धर्माचार्य

इन्द्रसेन—नलपुर जनपद का नायक, बाद का नाम कृतसेन

रामचन्द्र नाग—विदिशा का नाग-राजा

वकुल—एक यवन साधु, कालकाचार्य का शिष्य

कुजुल—ऋषिकों और हिंगुणों का महाक्षत्रप

भूमक—शक जाति की क्षहरात शाखा का एक नायक, क्षत्रप

नहपान— ,, ,, एक और क्षत्रप

उषवदात— ,, ,, नहपान का दामाद

द्वारिक, सैनिक, दंड पाशिक, चार, मद्यपिलाने वाला (शौंडिक) एक राजा, कच्छप दस्यु, नागरिक, कापालिक।

स्त्री—

सुनन्दा—कालकाचार्य की बहिन, बाद की सरस्वती

तन्वी—शकनायक भूमक की पुत्री

सखियां, नर्तकियां, चमर वाहिकाएं इत्यादि

समय—विक्रम सम्वत के लग भग १० वर्ष पूर्व से सम्वत प्रारम्भ तक

नान्दी

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे
स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूते
भवन्तिभूयः पुरुषाः सुरत्वात ।

[विष्णु पुराण]
[२।३।२४]

देवता स्वर्ग में भी यह गीत गाते हैं—धन्य हैं वे लोग जो भारत भूमि में उत्पन्न हुए हैं। वह भूमि स्वर्ग से भी विशिष्ठ है, क्यों कि वहां स्वर्ग और मोक्ष दोनों की साधना की जा सकती है। जो देवत्व भोग चुकते हैं वे मोक्ष के लिए पुनः भारतवर्ष में जन्म लेते हैं, जहां के आदर्श अपवर्ग की प्राप्ति में कारणभूत हैं।

पहला अंक

पहला दृश्य

[स्थान—धारा-नगरी से कुछ दूर का वनखण्ड। समय–संध्या से पूर्व। आगे २ कालकाचार्य, सुनन्दा श्राविका और वकुल श्रमण और उनके पीछे २ धारा-नगरी का राजा तथा कुछ नागरिक गाते हुए आते हैं। आचार्य कालक और वकुल सिर मुड़ाए है और गहरे नारंगी रंग का कौपीन पहिने हैं। सुनन्दा की भी कौपीन इसी रंग की है। उन तीनों की देहों पर किसी प्रकार का भी आभूषण नहीं है। भिक्षा का एक एक कमण्डल हाथ में लिए हैं। नागरिकों में पुरुष विविध भांति के वस्त्र धारण किये हैं---कोई केवल उष्णीश, कुर्तक, कंचुक और धोती पहिने हैं, कोई केवल धोती उत्तरीय, प्रावार से शरीर ढके हैं। नारियां रंग बिरंगी साड़ियां पहिने हैं और केशकलाप किए हैं। नर नारी–सब–कर्ण, ग्रीवा, तथा भुजाओं को अलङ्कारों से सजाये हुए हैं। राजा वृद्ध है, परन्तु स्वस्थ। सब नागरिक स्वस्थ और दृढ़–शरीर हैं। कालकाचार्य की आयु लगभग चालीस वर्ष के है। वह गम्भीर

और निश्चय—वृत्ति वाला है। भ्रूमध्य का संकुचन बतलाता है कि यह भयानक भी हो सकता है। वकुल भारतीय यवन है। रंग गोरे से कुछ ही हलका, आकृति सुन्दर। आंख चंचल, मुद्रा सक्रिय। आयु लगभग १८ वर्ष। अभी उसकी आंखें भीगती रही हैं। सुनन्दा की आयु लगभग पन्द्रह वर्ष की है। अति सुन्दर है। ओठों पर दृढ़ता है और आंखों में सहसा प्रवर्तन, जो धर्म और वर्ग के निषेधों के कारण दब दब कर उभर उभर पड़ता है। नागरिकों में कोई बांसुरी, कोई वीणा, मंजीर, स्वरमण्डल और मृदंग लिए हैं। ये वाद्य गीत का साथ दे रहे हैं।]

❀ गीत ❀

(हम्मीर राग)

वन पर्वत जनपद मधुघोले
उमग भरी मुस्कानों बोले—
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय,
जीवन-क्रम का हो यह निकाय।
अहंकार पर जय होते ही,
वर्चस ने अपने पट खोले;
वन पर्वत जनपद मधुघोले
उमग भरी मुस्कानों बोले—
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय,
वितरित करना है दया, न्याय।

कालकाचार्य—(गीत की समाप्ति पर) राजन्य—(थोड़ासा झटका खाकर) पिताजी, अब आप लौट जायँ। दूर निकल आए हैं। धारा नगरी के नर नारियो, आप सब, और अधिक कष्ट न करके अपने अपने निवास को जायँ; भगवान के आदेशों का स्मरण करते रहें और उनको बर्तते रहें।

राजा—वत्स ! (**तुरन्त दृढ़ होकर**) आचार्य कालक, जनता के हित के लिए, जनता के सुख के लिए, देवताओं और मनुष्यों के आनन्द के लिए, विचरण करो। आरम्भ में कल्याण, मध्य में कल्याण और अन्त में भी कल्याण करने वाले धर्म का, अर्थ और भाव सहित उपदेश करके सर्वांश में पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।

सब—बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।

कालकाचार्य—भद्रों, यदि भगवान का सन्देश देते देते, जनता को ज्ञान के मार्ग पर लाते लाते, हमारा शरीर भी क्षय होजाय तो हमारी सुगति हो जायगी।

सुनन्दा—हमलोग भगवान की शिक्षा जनता में भर देंगे। अनपवाद, अनपघात, संयम, एकान्तवास और चित्तवृत्तियों का नियन्त्रण ये सब, हम, जनता को साधना के साथ सिखलायँगे।

राजा—(**सुनन्दा को मोह की दृष्टि से देखकर**) सुनन्दा कितनी विवेकमयी है ! कालक, आचार्य कालक, सुनन्दा की आयु मुझको थोड़ा सा व्यथित करती है।

कालकाचार्य—राजन्य, आशङ्का न करें। आशङ्का मोह का दूसरा नाम है। हमको मोह नहीं करना चाहिए। मोह एक दूषण है। हमको मोह से निष्कृति पानी चाहिए।

राजा—तुम मालवों में जारहे हो; हम उत्तमभद्रों का उनसे मनो-मालिन्य है। तुम विदिशा के नागों में जाओगे; वे हमारे शत्रु रहे हैं। तुमको दस्यु कच्छप और मनुष्य भक्षी वनवासी बर्बर जातियां मिलेंगीं। मैं तुम्हारे ज्ञान और पुरुषार्थ को जानता हूँ, परन्तु (**गद्गद कंठ से**) सुनन्दा अल्पवयस्क है और अति सुकुमार।

सुनन्दा—मेरी आत्मा न तो थोड़ी आयु की है और न वह निर्बल और अदृढ़ है।

कालकाचार्य—बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।

सब—बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।

(नागरिकों के मन में स्वास्थ्य, शक्ति और उल्लास की लहर सजग है, परन्तु वे गम्भीर बनने का प्रयत्न करते हैं।)

कालकाचार्य—राजन्य, मैं फिर कहता हूँ कि आप मोह को त्यागदें। हमलोग उज्जैन, विदिशा, महेश्वरपुर, कालञ्जर, पद्मावती इत्यादि जनपदों में भगवान का उपदेश सुनायँगे। हमारे क्षण-भंगुर शरीर की आपको चिन्ता न करनी चाहिए।

एक नागरिक—मैं पूछता हूं क्या ये जनपद फिर अन्धकार में समा गए हैं? क्या वहां धर्म और संघ की महिमा लुप्त हो गई है!

कालकाचार्य—मैं बतलाता हूं भद्र, तेरह कोस लम्बी और नौ कोस चौड़ी उज्जैन नगरी में कापालिकों के जीव-बलिदानों और वहां के राजा गर्दभिल्ल के पिशाचपन ने उस पावन-नगरी, विद्याओं के पीठ को पाप प्लावित कर रखा है। विदिशा के नाग सर्पों की पूजा करते हैं। ब्राह्मणों द्वारा यज्ञों में पशुमेध कराते हैं; नलपूर और भद्रावती में उत्तमभद्रों के गणों का शासन होते हुए भी कच्छप डाके डालते हैं और नर-बलि में रस लेते हैं, कालञ्जर में ब्राह्मणों ने बहुत सिर उठा रखा है—

सुनन्दा—और पद्मावती में शकों ने बौद्ध और शैव मतों को मानो, परस्पर विभक्त कर लिया है। दोनों मिलकर आर्य व्यवस्था को मिटाना चाहते हैं। हम उनको सुमार्ग पर लायंगे।

राजा—शक हम उत्तमभद्रों के मित्र हैं। वे, विदिशा के राजा रामचन्द्र नाग से सब बातों में उत्कृष्ट हैं, जो वर्ण-व्यवस्था को बनाए रखने की आड़ में महा कुकर्म करता रहता है।

कालकाचार्य—वह शुङ्गों का उत्तराधिकारी जो ठहरा, जिन्होंने निरसहाय बौद्धों के तीर्थ-स्थान सांची के स्तूपों को ध्वस्त कर डाला था। हम विशुद्ध जैन धर्म के उपदेशों द्वारा उन सब प्रदेशों को स्वच्छ और शुद्ध करेंगे—सच्चे आर्य धर्म की रक्षा करेंगे।

राजा—प्यारे नागरिको, इन तीनों को आशीर्वाद दो। संसार में पापों की कालिमा बिछी हुई है, ये उसको उज्ज्वल करने में सफल हों।

नागरिक—स्वस्ति! स्वस्ति!!

वकुल—हम लोग पहले उज्जैन जायेंगे और सब से पहले वहां के व्यसनी, दुराचारी शैव राजा गर्दभिल्लका परिष्कार करेंगे।

सुनन्दा—वेत्रवती, क्षिप्रा, चर्मण्वती, सिन्धु, नर्मदा, मधुमती, पुष्पजा इत्यादि नदियों के उपत्यकाओं में घूम घूमकर वन पर्वतों को भगवान के उपदेशों के मधुर मधु से भर देंगे।

राजा—सुनन्दा, तुम आचार्य और वकुल का साथ छोड़कर अकेली कहीं न जाना। व्यर्थ कष्ट मत झेलना।

वकुल—आचार्य का यह शिष्य साथ में, फिर आचार्य या आर्यिका सुनन्दा को कष्ट!

सुनन्दा—चिन्ता और मोह को छोड़िए, राजन्य। मैं यदि मारी जाऊँगी तो पूर्वजन्म का कर्मफल गल जायगा और मैं मोक्ष पाजाऊँगी।

कालकाचार्य—संघ में आयु किसी अन्तर या परस्थिति का कारण नहीं बनती। राजन्य, आप सुचित्त हों। कष्ट हम लोगों का कुछ नहीं कर सकते। गुरु की आज्ञा है—सैनिकों, ब्राह्मणों, उत्पातियों, याचकों, हत्यारों और लुटेरों में सामञ्जस्य और समान निग्रह के भाव के साथ पैठ करो। अपकार के आदान में उपकार प्रदान करने से जो मनोबल बढ़ता है उसकी मात्रा आंकी नहीं जा सकती।

एक नारी—कोई इन सुन्दर साधुओं को मार न डाले !

दूसरा—ठट्ठा है मार डालना ! हम उत्तमभद्र, पद्मावती के शक और उनका क्षत्रप घटाक तथा सिन्धुसौवीर के हमारे अनेक शक क्षत्रप मित्र कहां जायंगे ?

कालकाचार्य—सुचित्त ! नगर निवासियो, सुचित्त !!

राजा—मालव, यौधेय और आरक—ये तीनों गण हमारे पुराने शत्रु हैं। यदि इनमें से किसी ने भी इन वीतरागियों का अहित किया तो --

कालकाचार्य—न्याय और तर्क द्वारा सब प्रकार की कलह शान्त की जा सकती है। उत्तमभद्रों और इन तीनों गणों में परस्पर मैत्री स्थापित करवाने का मैं उपाय करूँगा। उन लोगों के भ्रमों का उच्छेदन हो जायगा।

एक नागरिक—उस प्रकार के भ्रमों का अधिक प्रबल उच्छेत्ता म्यान से बाहर निकला हुआ खड्ग और धनुष की डोरी पर चढ़ा हुआ बाण ही होता है।

कालकाचार्य—सावधान ! शान्त !! नागरिक। हिंसा से निरत होने का साधन हिंसा नहीं हो सकता। हमारे संघ ने इन सब को सभ्य और संस्कृत करने का संकल्प कर लिया है। भगवान का उपदेश सुनकर ये दैत्य मार्ग को छोड़कर दिव्यता को पा जायंगे।

सब—स्वस्ति ! स्वस्ति !!

राजा—स्वस्ति। असुर पर सुर की विजय होगी। इन्द्र, कुबेर और वसु इन साधुओं की पूजा करेंगे।

कालकाचार्य—भद्रो, हम लोग आपकी कृपा और आशिष के आभारी हैं। अब आप लौट जायं। **(मुस्कराकर)** यह थोड़ा सा समय इस वनखण्ड में कल्याणकारी चर्चा में व्यतीत हुआ है। अभी संध्या होने

में विलम्ब है, पर हमारे पहले विश्राम का विहार अभी दूर है और आप लोग धारा नगरी से बहुत बाहर निकल आए हैं।

सब—कुशलमस्तु।

(राजा नीचा सिर कर लेता है और खिन्न होकर लौटता है। नगर निवासी संयत आल्हाद में हैं। वे सब प्रणाम करके धीरे धीरे लौट पड़ते हैं। पहले वे तीनों चले जाते हैं, फिर नगर निवासी। इन सबके चले जाने पर वे तीनों फिर आ जाते हैं।)

सुनन्दा—आचार्य, क्षिप्रा तो बड़ी सुन्दर होगी!

कालकाचार्य—सरिता सुन्दर है, परन्तु उसके तट पर रहने वाले कुरूप हैं। जैसे कामना और वासना, विनय और आकांक्षा, कमल-परिमल और दुर्गन्धि, पुचकार और ताड़ना, तथा कल्पना और सम्भावना एक नहीं होती वैसे ही क्षिप्रा का सौन्दर्य और वहां के राजा गर्दभिल्ल का कुरूप एकरस नहीं हो सकते। इनको सुसंगत करना है, व्यवस्थामय।

वकुल—सुना है मालवों के महवर्गी कच्छप और आरक उत्तमभद्रों की सीमा और भूमि के प्रति कोई श्रद्धा नहीं रखते। लुटेरी और बटमारी करते हैं, बलिदान के लिए बालक बालिकाओं को चुरा ले जाते हैं; ग्रामों में आग लगाते हैं। विन्ध्यप्रदेश के हमारे दशार्ण-खण्ड में यह सब नहीं हो पाता।

सुनन्दा—वहां भगवान के उपदेशों का अधिक आदर होगा।

वकुल—हां बहिन, जैसा मनोहर उपदेश वैसा ही मनोहर प्रदेश। मनोरम हरी भरी घाटियां। उपत्यकाओं की सरस मन्जुल दूब मुस्कराती हुई और दूब की दमकती हुई ओस पर हँसती नाचती हुई रवि रश्मियां—

कालकाचार्य—इस वासना लिप्त उद्‌गार से मनको विरक्त करके केवल उस वचन के स्मरण पर स्थिर करो—"बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय"

वकुल—(संकुचित होकर, बरबराते हुए) 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'।

कालकाचार्य—हां ऐसे ही। (पश्चिम की ओर देखकर) सूर्यास्त में विलम्ब नहीं है। दूर तो बहुत निकल आए हैं, परन्तु अभी अपने विहार के निकट नहीं पहुचे हैं।

सुनन्दा—आचार्य, मुझमे एक मिथ्या विचार का दोष हो गया है। कह देने से मुक्त हो जाऊंगी ?

वकुल—एक मुझसे भी होगया है।

कालकाचार्य—धर्म चर्चा का निरन्तर करते रहना महा मङ्गल है। कह डालो।

सुनन्दा—जब उज्जैन के राजा गर्दभिल्ल की चर्चा हो रही थी तब मेरे मन में आया था—उसको निकाल कर प्रासाद में विहार स्थापित करूंगी और वहीं रहूंगी। यह मिथ्या विचार है हमको प्रासादों से कोई प्रयोजन नहीं।

कलाकाचार्य—तुम दोषमुक्त हुई।

वकुल—और मेरे मन में आचार्य यह उठा था कि जितने दस्यु, बटमार, हत्यारे और कापालिक हैं—गर्दभिल्ल समेत,—उन सबको खड्ग के घाट उतार दूं।

कालकाचार्य—तुम भी दोष मुक्त हुए।

(नेपथ्य में खड़बड़ होती है)

सुनन्दा—(चौंककर) वन में यह कैसा शब्द है आचार्य ?

वकुल—कुछ पैरों की आहट जान पड़ती है। प्रकाश बहुत कम रह गया है।

कालकाचार्य—(**ठिठककर, परन्तु संयत स्वर में**) होगा। हम लोग मुनि हैं। कोई चिन्ता नहीं, चले चलो।

(**वे लोग बढ़ते हैं**)

(**वृक्षों की झुरमुट में से कुछ दस्यु यकायक आजाते हैं। वे सशस्त्र हैं। दस्यु उष्णीश, कुर्तक और जांघए पहिने हैं। उनके आने के पहले ही सुनन्दा एक पेड़ के पीछे छिप जाती है।**)

कालकाचार्य—बन्धुओ, क्या योजना है?

दस्यु सरदार—बन्धुओ नहीं, बापुओ कहो। तुम लोग उत्तमभद्र हो न? (**वकुल सिकुड़ता है**)

कालकाचार्य—थे—अब श्रमण हैं। कौन हो? क्या चाहते हो?

दस्यु सरदार—हमलोग नलपुर जनपद के कच्छप हैं और मालवों के अतिथि। तुम्हारी सीमा में कुछ मौज के लिए आपड़े हैं। कच्छप नाम ही हमारा और हमारे रँगढँग का पूरा-सूचा परिचय दे देता है। (**सुनन्दा को झांकते हुए देखकर**) अच्छा! एक और भी है!! इधर आओ तुम!!!

(**सुनन्दा आजाती है।**)

कालकाचार्य—हमलोग त्यागी विरागी हैं।

(**सुनन्दा भयभीत है।**)

दस्यु सरदार—ओह लड़की है! तुम निर्भय रहो। तुमको कोई नहीं छुएगा।

वकुल—हम तीनों साधू हैं।

दस्यु सरदार—समझते थे कि कोई अच्छी चिड़िया हाथ लगेगी, परन्तु सगुन बिगाड़ने को बदे थे हमारे भाग्य में तुम! इसलिए हे दोनों

घुटमुंड, मुस्टंड भुखमरे, ये कपड़े उतारो, नंगाझोरी दो और लंगोटी तथा कमंडल के साथ यहां से अपने जनपद की ओर खिसक जाओ। यदि यहां तुम दूसरों को घुटमुंड बनाने के लिए कुछ और ठहरे, तो, हम तुम्हारी हड्डियों को काली माई की भेंट करेंगे।

कालकाचार्य—(**निर्भीकता के साथ**) हम मरने से नहीं डरते।

दस्यु सरदार—परन्तु कपड़ों का त्याग करने से तो डरोगे।

कालकाचार्य—उससे भी नहीं भयभीत होते। हमको डर लग रहा है तुम्हारी आत्मा की भावी दुर्गति का।

दस्यु सरदार—आत्मा के बच्चे उतार कपड़े! कपड़ों की किसी सीवन में, या कहीं नीचे, छिपाए होगा मुद्राएं या सोने की जयमाला। उतार, उतार! दे नंगाझोरी!!

कालकाचार्य—(**निर्भयता के साथ**) सुनो बन्धुओ! यह जीवन कितने दिन का है? उस समय की बात सोचो जब तुम्हारा यह फूला हुआ शरीर हाड़ों का ढांचा मात्र रह जायगा। ज्ञान की ज्योति से अपने भीतर के तम को भगाओ, तथा—

दस्यु सरदार—तथा के भूत, ऊल-जलूल मत बक। यह सब उत्तम-भद्रों को सिखलाया कर। इस विन्ध्याचली छोर की कन्दराओं में इस प्रकार की सब बकवास न जाने कहां समा जाती है। उतार कपड़े नहीं तो देता हूँ दो ठूंसे नाक पर जहां से बह पड़ेगी लाल लाल ज्योति की धारा, और टपक पड़ेंगे दो चार दांत यदि मुँह में हों तो। (**मुक्का तानता है।**)

कालकाचार्य—बन्धुओ, कुमार्ग को छोड़ो—

दस्यु सरदार—परन्तु तुम इस वनपर्वत को छोड़कर अपने उत्तम-भद्रों की ओर काला मुँह न करोगे! पटक दो जी इसको और उतारो इसके कपड़े! फिर उत्तमभद्रों के कुछ गांव लूटने हैं—और न लूट सके तो

आग लगाने से तो हम चूकने वाले नहीं। सावधान कर देना रे अपने घुटमुंडे भाइयों को।

वकुल—ओह! न हुआ हाथ में खड्ग !!

(उन दोनों से दस्यु चिपट जाते हैं और लंगोटी के सिवाय उनके सब कपड़े छीन लेते हैं। सुनन्दा घबराकर मुँह ढांप लेती है। वकुल के कपड़ों में कुछ चांदी की और ताम्बे की मुद्राएं मिलती हैं।)

दस्यु सरदार—(प्रसन्न होकर) हमने कहा था न कि कपड़ों में मुद्राएं खोंसे होगा। जाओ बेटा अब।

वकुल—बन्धुओ, हमको कुछ तो लौटा दो। हमको दूर की यात्रा करनी है। मार्ग व्यय ही दे दो पाथेय के लिए।

दस्यु सरदार—अच्छा, ताम्बे की मुद्राएं ले जाओ। भागो, नहीं तो मेरा मन बदल जायगा।

कालकाचार्य—मत लो मुद्राएं। भगवान इनका भला करें।

(वे तीनों चले जाते हैं।)

दस्यु सरदार—(हँसकर) जीवन थोड़े दिन का है! हो, हो! हाड़ों का ढाँचा !! हो, हो !!!

एक दस्यु—(हँसकर) और ज्ञान की ज्योति से भीतर के अंधेरे को भगाओ! हो, हो !!

सब—(हँसकर) भगा दिया। भगा दिया।

(वे सब हँसते हुए जाते हैं।)

दूसरा दृश्य

[स्थान-उज्जैन। महाकाल के मन्दिर के सामने का मैदान। इधर उधर छायादार वृक्ष। एक ओर कन्दरा। बीच बीच में मंगल घटों पर कदली के मंडप, तोरण और वितान। थोड़ी दूर

क्षिप्रा नदी बह रही है। कुछ दूरी पर चौड़े सकरे मार्गों वाला नगर। उत्सव के कारण मैदान में भीड़ भम्भड़। एक स्थान पर कुक्कुट लड़ाए जा रहे हैं। पुरुष रंग बिरंगे कुर्तक, कचुंक, धोतियां पहिने हुए हैं। कोई उष्णीश बांधे हैं और कोई नंगे सिर हैं, सिर के बाल पीछे फहराने वाले। गले में हार, कानों में कुण्डल, भुजाओं पर भुजबन्ध और कमर में करधनी। पैरों में चोंचदार जूते जिनके पीछे का भाग पिंडलो के मध्य तक आकर लौट गया है—जैसा कि विन्ध्यखण्ड में ग्रामीण अब भी पहिनते हैं। कोइ कोई सटे पैजामें भी पहिने है। कमर में खड्ग और पीठ पर छोटी ढाल है। जो वयस्क हैं वे दाढ़ी रक्खे हैं। कुछ नंगे पांव हैं—केवल धोती पहिने और उत्तरीय ओढ़े हुए। माथे पर लगभग सबके त्रिपुण्ड है। स्त्रियां कन्चुकी और साड़ी या लहंगा पहिने हैं। गले में हार, वनमाला, माथे पर बेंदी और किसी के ललाट पर स्वर्ण पटबन्ध। कुछ के केश कलाप पर पुष्प-किरीट। किसी किसी के केश बंधनों से बाहर छिटके हुए, जिनकी गुड़ाओं में स्वर्ण की रत्नजटित लड़ें गूँथी गई हैं। कानों में विविध प्रकार के कर्ण-फूल। गले में मोहन माला। हाथों में चूड़ी, कंकण और मङ्गल-मोहन। कमर में किंकिणि और आधी जांघों तक झूलती हुई मेखला। पैरों में कड़े, तोड़े, पायल और नूपुर। स्त्री पुरुष सब स्वस्थ, पुष्ट और प्रसन्न।]

नेपथ्य में वीणा, स्वर-मण्डल, बांसुरी और मञ्जीर के साथ गायन—

ॐ नमः शम्भवायच मयो भवाय च
ॐ नमः शंकरायच मयस्कराय च
ॐ नमः शिवायच शिवतराय च।

(एक ओर से कुछ स्त्रियों का गायन और नृत्य करते हुये प्रवेश।)

❀ गीत ❀

(राग-धानी)

भरे कलश घर आये,
मङ्गल साज सजाये;
मणि मुक्ता से छलक रहे हैं,
दामिनि द्युति से दमक रहे हैं।
रत्नों द्वार रचाये, जनमन मोद समाये;
भरे कलश घर आये,
मङ्गल साज सजाये।

एक स्त्री—मैं तो नाचते नाचते थक गई। थोड़ा विश्राम करूँ।

दूसरी स्त्री—मेरा शरीर तो नहीं, परन्तु मन नाचने से थक गया। उस सामने वाले बड़े कदली-मण्डप का खेल अभी आरम्भ नहीं हुआ?

पहली स्त्री—खेल कहती हो उस क्रिया को! वह तो जीवित समाधि लेगा; सांस टूट गई तो मरा! तुम उसे खेल समझती हो!!

दूसरी स्त्री—खेल न सही बाई, संकट सही। परन्तु यह निश्चय है कि वह मरेगा नहीं, क्योंकि इतने बड़े उत्सव में मरने के लिए यहां कोई नहीं आयगा। मुझको अचंभा होता है वह इतनी लम्बी सांस, इतनी देर तक कैसे साधता होगा। क्या वह अपनी क्रिया को समझावेगा भी या सब गुप चुप ही करेगा?

पहली स्त्री—तुम सीखोगी?

दूसरी स्त्री—क्यों, क्या हो गया? जो काम पुरुष कर सकते हैं वह स्त्रियां भी कर सकती हैं। बौद्धों का एक मठ यहां है न! उसमें तो स्त्रियां न जाने क्या क्या क्रियायें करती हैं।

पहली स्त्री—अरे रे, वे तो हँसती नहीं हैं। बोलती हैं तो ऐसे जैसे किसी ने होंठ सीं दिए हों। हम को तो ऐसी क्रिया नहीं सीखनी।

दूसरी स्त्री—पुरुषों की समानता करने चली थी, अब झिझक उठीं न ?

पहला स्त्री—अरी, हम लोग घर द्वार छोड़कर क्या मटों की गुम सुम भुगतने को जन्मी हैं ? सीखें नहीं, पर जान तो लें कि जीवित–समाधि कैसे ली जाती है।

दूसरी स्त्री—अरी बाई, इन लोगों ने यह सब छिपा कर रक्खा है। कहते हैं गुप्त रक्खो, गोपनीय है। ऐसा इसमें क्या है जिसे ये छिपाते होंगे ?

पहिली स्त्री—दूसरों को हानि पहुंचाने की उस क्रिया में कोई शक्ति होगी इसलिए छिपाते होंगे।

दूसरी स्त्री—ओ हो तुमको तो सब शास्त्र पढ़ा दिया गया है न ! सब भेद मालूम हो गए हैं न !!

(नेपथ्य में कोलाहल—'चलो', 'हटो'। दूसरी ओर से पुरन्दर कापालिक का प्रवेश। उसके पीछे पीछे कुछ और कापालिक। केश रखाए हुए और जूट बांधे हुए। गले में मुंडमाल, जो सुमन-मालाओं से लगभग ढकी हुई है। कानों में कुण्डल, भुजों पर रत्न-जटित वलय, शरीर पर भस्म और उपवीत। सबकी कमर में कुठार और हाथ में डण्डे। किसी किसी के हाथ में प्याली। 'जय महाकाल' कहते हुए कदली मंडप के नीचे के आसनों पर जा बैठते हैं। बीच की एक ऊंची आसन पर पुरन्दर। सब पुष्ट शरीर। कपड़े भगवें। कोई कोई व्याघ्र चर्म लपेटे हैं।)

पहली स्त्री—कैसे भयानक दिखते हैं ये सब !

दूसरी स्त्री—सीखना है इनसे जीवित–समाधि लेने की क्रिया ?

पहली स्त्री—हाथ जोड़े मैंने। मैं तो ऐसी ही भली। जीवित–समाधि के बिना ही किसी दिन चैन के साथ मर जाने की साध रखती हूं।

दूसरी स्त्री—ओ हो, अब यह शास्त्र !

एक कापालिक—अब हमारे गुरू महाराज आचार्य पुरन्दर जी जीवित-समाधि लेते हैं। देखो कैसी विलक्षण बात है।

(एक गड्ढा खोदा जाता है)

(दूसरी ओर से कालकाचार्य सुनन्दा और वकुल का प्रवेश।)

पहली स्त्री—अब ये आए जो सब बाते उल्टी उल्टी कहेंगे।

वकुल—(सुनकर) नहीं देवी, हम सन्यासी हैं। तुमको सच्चा ज्ञान देने आए हैं। सामने जो कुछ हो रहा है और होने वाला है, सब आडम्बर है, सब पाखण्ड है। यह सब वासनाओं का खुला हुआ द्वार है। यह विष की खेती है। अमृत की खेती करो। श्रद्धा के बीज बोओ। उस पर तप की वर्षा होगी। प्रज्ञा के हल, पापों से लाज करने की हरिस, मनकी जोत और स्मृति की फार से अपने जीवन खेत को जोतो। सत्य तुम्हारा खुरपा हो, उत्साह बैल हो। यही सच्चा योग क्षेम है। इसी से अमृत फल मिलेगा। सामने जो हो रहा है वह विष की खेती है। यह जो कुक्कुट लड़ा रहा है इसको विदित होना चाहिए कि किसी भी पल काल इसको अपना ग्रास बना लेगा।

कालकाचार्य—भद्रे—

दूसरी स्त्री—तुम्हारा होय भद्र। हम सधवा हैं, यह महाकाल जी की उज्जैन नगरी है, और हम मालव हैं, इतना स्मरण रखना।

(गड्ढा तैयार होगया है। पुरन्दर उसमें समाधि लेने वाला है।)

एक कापालिक—आचार्य पुरन्दर पूरे एक महीने की समाधि लेने की शक्ति रखते हैं, परन्तु वे कुछ घड़ियों की ही समाधि लेंगे। जैसी कुछेक घड़ियां वैसे ही महीने। सावधान होकर देखो।

कालकाचार्य—हे मालव-नर नारियो, मेरी बात सुनो। गङ्गा, यमुना, नर्मदा, क्षिप्रा चाहे किसी भी नदी में कलुषित कर्मों वाला मूढ़ कितना

में स्नान करे, पर शुद्ध नहीं होगा। यह क्रिया योग का असत् और मिथ्या उपयोग है। योग की सब क्रियाएं केवल मनोनिग्रह और चेतन समाधि के लिए हैं। उनको शुद्ध करने के उपकरणों से मन को निर्मल करने वाले उपकरण भिन्न होते हैं। तन साधन मात्र है, मन संचालन का केन्द्र। इस केन्द्र को शुभ और शुभ्र बनाओ।

(इसी समय एक छोटे कदली-वितान के नीचे एक ब्राह्मण समिधा जलाकर हवन करता है। कालकाचार्य का उप ओर ध्यान जाता है) हे ब्राह्मण, इन लकड़ियों को जला कर तू क्यों शुद्धि मानता है? यह शुद्धि नहीं है। यह तो एक बाहरी उपादान है। पंडित लोग इसको शुद्धि नहीं कहते। अपने भीतर की ज्योति जगा; वही सब कुछ है।

ब्राह्मण—चुप। पांडित्य मत बघार। हम तुझको युगों तक पढ़ा सकते हैं।

एक कापालिक—तुम दाल-भात में मूसलचन्द कहां से आगए जी? देखना हो तो चुप-चाप खड़े रहो, नहीं तो नौ दो ग्यारह हो जाओ।

(पुरन्दर गड्ढे में खड़ा हो जाता है।)

कालकाचार्य—अरे मूर्ख, इस जटा जूट के रखा लेने से तेरा क्या बनेगा? और क्या यह व्याघ्रचर्म तुझको मुक्ति देगा? व्याघ्र किसी समय वन में स्वच्छन्द विहार करता होगा और वन की शोभा रहा होगा। तूने या तेरे किसी विचार हीन भक्त ने उस निस्सहाय व्याघ्र को मार डाला और अब तू उसके चर्म से अपने इस नाशमान शरीर को सजाए फिरता है!

कापालिक—देखो, बहुत बक-बक मत करो। हमारे धर्म में विक्षेप मत करो।

कालकाचार्य—तू अपने किए पापों से अपने को मलिन बना रहा है। पाप छोड़ दे, शुद्ध हो जायगा। यह धर्म नहीं है।

पहली स्त्री—बाबा, तुमको यही अवसर हमारे आनन्द को नष्ट करने के लिए मिला ? हाथ जोड़ती हूं। देख लेने दो। हम थोड़ी देर में अपने अपने घर चली जायेंगी। तब मन चाहे उपदेश दे लेना। हैं—देखो, तो। चुप ही नहीं रहते।

कालकाचार्य—जिस समय चित्त किसी कारणवश जड़ हो जाता है उस समय हित अहित कुछ समझ में नहीं आता। बर्तन के पानी में काला रंग डाल देने के बाद जैसे उसमें हमें अपना प्रतिबिम्ब ठीक ठीक नहीं दिखलाई देता, उसी प्रकार जिसका चित्त विकारमय और व्यग्र हो गया है, उसे अपने हित अहित का बोध नहीं रहता।

दूसरी स्त्री—चलो बाई, घर चलें। इन बाबा भिक्खुओं के मारे मेला ठेला में कुछ भी आनन्द नहीं मिल पाता।

(स्त्री-पुरुष जाने को उद्यत।)

कापालिक—ठहरो, मालव नर-नारियो, ठहरो। हमारी भुजाओं में पर्याप्त बल है। ये शकों और तुखारों के भाई बन्द हैं। उपदेशों की आड़ में हमको पुरुषार्थ रहित करना चाहते हैं। हम इनको अभी निकाल बाहर करते हैं।

कालकाचार्य—अरे ! यह तेरा गर्वीला रूप एक दिन जीर्ण-शीर्ण हो जायगा। इस देह को एक दिन गल गलकर भग्न हो जाना है। इस घृणित देह पर इतना गर्व और दूसरों की अवहेलना करना, तेरी महान मूर्खता का प्रमाण है।

कापालिक—(**पास आकर**) तुम कोई घुटी खोपड़ी बौद्ध या जैन हो ? कौन हो ?

कालकाचार्य—(**दृढ़ता पूर्वक**) दोनों हूँ अथवा कोई, अथवा कुछ नहीं। भगवान का बहुत छोटा सेवक।

कापालिक—क्यों व्यर्थ ही रार ठान रहे हो ? हम लोग साधारण शैव नहीं हैं। हम भैरव-कापालिक हैं जिनको बलिदान के लिए तुम्हारे सरीखे नर-मुण्डों की कभी कभी आवश्यकता पड़ जाती है। यह एक सुन्दर छोकरा माला के लिए अच्छा मुण्ड दे सकता है। और यह क्या ! अरे ! एक सुन्दर छोकरी भी लिए हुए डोल रहे हो ! इसको चौपट करने के लिए क्यों उतारू हुए हो ? भागो नहीं तो अब डंडे का उपदेश मैं देता हूं।

(नेपथ्य में 'मालवगण की जय,' का शब्द होता है और फिर 'हटो, बचो' का।

उज्जैन के अधिप गर्दभिल्ल का प्रवेश। तीस वर्ष की आयु का सुन्दर पुरुष। वेशभूषा उज्जैन के समवयस्क पुरुषों जैसी। सिर पर छोटा सा मुकुट, केवल यही विशेषता। पीछे पीछे कुछ सुसज्जित योधा, जूते, पाजामें, कुर्ते, अंगरखे और उष्णीश बांधे हुए। उज्जैन के कुछ प्रमुख दाएं बाएं। कोई साज-सिंगार या धूमधाम नहीं। इस युग में दो सहस्र वर्ष आगे का राज-रूप अभी विकसित नहीं हुआ है।)

गर्दभिल्ल—(उपस्थित जनता को पहले प्रणाम करके) नमस्कार मालव नर-नारियो।

(सब जन सम-अभिवादन करते हैं।)

गर्दभिल्ल—कापालिक जी, क्या बात है ? क्या ये जैन साधु अथवा बौद्ध भिक्षु हैं ? क्या कोई विवाद चल रहा है ?

कापालिक—राजन्य, हमारे आचार्य पुरन्दर जी जीवित समाधि का प्रदर्शन कर रहे हैं। वे गर्त में उतर भी चुके हैं। परन्तु यह व्यर्थ ही गाली दे रहा है। हम लोगों को किसी की भी गाली सुनने का अभ्यास नहीं है।

सुनन्दा—हमको गाली सुनने का अभ्यास है, कापालिक। परन्तु हम गाली खाकर और कठोर वचन पीकर भूले भटके जनपदों को ज्ञान का मधु बांटते रहते हैं। हमको तुम क्षुब्ध नहीं कर सकते।

गर्दभिल्ल—जान गया आप लोग बौद्ध श्रमण हैं।

सुनन्दा—नहीं हैं।

गर्दभिल्ल—कहां से आना हुआ?

वकुल—हमलोग धारा से आए हैं।

गर्दभिल्ल—धारा से! अस्तु। आप हम मालवगण के अतिथि हैं। कापालिक जी, जाओ अपना काम देखो।

वकुल—ये आचार्य कालक हैं—धारा के राजकुमार, और, ये श्राविका सुनन्दा राजकुमारी हैं।

कालकाचार्य—हमारा यह परिचय निरर्थक है।

सुनन्दा—भ्रान्ति में डालने वाला।

(गर्दभिल्ल आदर पूर्वक प्रणाम करता है।)

गर्दभिल्ल—आप हमारे संभ्रान्त, पाहुने हैं। मालवगण का मधुपर्क हमारे भवन में ग्रहण कीजिए न।

कालक—जी नहीं। हमलोग सत्कार के भूखे नहीं हैं। हमलोग ज्ञान प्रचार के भूखे हैं। सम्मान का मोह अज्ञानियों का लक्षण है।

कापालिक—मालवगण में अनेक द्रावक और भिक्षु आते हैं। अपनी बात कहते हैं और चले जाते हैं, परन्तु ऐसे दंभी न तो यहां प्रवेश पाते हैं और न स्थान।

(अन्य कापालिक आ जाते हैं।)

गर्दभिल्ल—इस प्रकार का व्यवहार मालवगण की शिष्टता को शोभा नहीं देता। ये हमारे अतिथि हैं। इनका अपमान नहीं किया जाना चाहिए।

वकुल—हमने जितनी अभद्रता उज्जैन में पाई उतनी और कहीं नहीं। ये बखरी के परनाले हैं। बहते हों तो बहें। हम उपेक्षा करते हैं।

(कापालिक दांत पीसते हैं।)

एक कापालिक—हमको आज नर-बलि भी चढ़ानी है। **(वकुल की ओर घूरता है)।**

(कोलाहल होता है)

गर्दभिल्ल—शान्त। कापालिक तपस्वियो, शान्त नर नारियो।

(लोग शान्त हो जाते हैं)

कालकाचार्य—हमको विदित है इन कापालिकों और अन्य शैवियों ने जैनियों को भी त्रास दे रक्खा है। वे भयभीत होकर पिछड़ गए हैं, परन्तु हम उत्तमभद्र हैं। हमारा दमन नहीं किया जा सकता। हम इनको बोध, ज्ञान और प्रकाश देने आए हैं।

ब्राह्मण—**(हवन कुण्ड से उठकर)** अरे, हम तुम सब को जानते हैं। समान-व्यापी पाखण्डी और धूर्त !

कालकाचार्य—रोगी को न तो वैद्य अच्छा लगता है और न औषधि भाती है। ब्राह्मण, तुम तो रोगियों में महान जो हो। हम और हमारा उपदेश तुमको क्यों हितकर लगने लगे ?

(कोलाहल होता है।)

गर्दभिल्ल—ब्राह्मण सावधान। साधुओ यहां से जाओ। मालवों के राजन्य की आज्ञा है।

(इसी समय पुरन्दर सिंगा बजाता है सब कापालिक उसके पास दौड़कर चले जाते हैं। कालकाचार्य सुनन्दा और वकुल का निश्चित वृत्ति के साथ प्रस्थान। गर्दभिल्ल सुनन्दा को स्नेह और आदर की दृष्टि से देखता है। सुनन्दा उसकी ओर देखकर गर्व के साथ दूसरी दिशा में देखती हुई चली जाती है।)

(दूसरी ओर से इन्द्रसेन का प्रवेश इन्द्रसेन यौवन में है। शरीर लम्बा और दृढ़। केश पीछे को लौटे हुए। कमर तक की अँगरखी और धोती पहिने है। जूते वैसे ही। आभूषण उसी प्रकार के पहिने है जैसे मालव जनपद के अन्य पुरुषों के हैं। कमर में तलवार, पीठ पर छोटी ढाल। उसकी गंभीर आकृति शान्त स्थिति से भीग सी रही है। नेत्र सतेज. परन्तु स्थिर हैं। भ्रूमध्य से कुछ ऊपर केसर का बिन्दु लगाए है। छाती के नीचे तक मोतियों से जड़ा हुआ स्वर्णहार पहिने है जिसके बीचों बीच एक बड़ा मणि है। गर्दभिल्ल और इन्द्रसेन परस्पर अभिवादन करते हैं—बहुत थोड़ा मस्तक झुका कर। सब नागरिक अभिवादन करते हैं।)

गर्दभिल्ल—स्वागत मालव-गौरव।

इन्द्रसेन—धन्यवाद राजन्य। अभी कुछ कोलाहल हो रहा था। क्या था उसका कारण?

गर्दभिल्ल—(पुरन्दर के मंडप के पास जाकर) धारा के जैन सन्यासियों और कापालिकों में कुछ वितण्डावाद हो गया था। सन्यासियों में वहां के राजकुमार और राजकुमारी भी थे। चले गए। अब हो न आचार्य पुरन्दर का योग प्रदर्शन?

इन्द्रसेन—हो राजन्य। उत्तमभद्रों के राजकुमार और राजकुमारी! हूँ। आरम्भ हो। मैं आचार्य के दर्शन करने आया था।

(नमस्कार करता है। पुरन्दर वरद हस्त करता है। पुरन्दर पद्मासन लगाकर प्राणायाम करने के उपरान्त समाधि लेता है। गड्ढा पूर दिया जाता है और पाट भी दिया जाता है। नर नारी नाचते हुए 'जय महाकाल जय महाकाल,' कहते हैं।)

इन्द्रसेन—राजन्य, आज उत्सव की समाप्ति का दिन है। मैं कल नलपुर चला जाऊँगा।

गर्दभिल्ल—नहीं आर्य। अभी और कई प्रकार के उत्सव होने को हैं। आपके यहां पधारने से उज्जैन-निवासी आनन्द में झूम उठे हैं। कुछ दिन तो और ठहरिए।

इन्द्रसेन—मथुरा से आगे बढ़कर पद्मावती में शकों ने पैर रोप लिए हैं। उत्तमभद्रों ने उनका साथ दिया है, और देरहे हैं। उधर सिन्धुसौवीर, सुराष्ट्र, लाट और परान्त में भी बौद्ध धर्म की आड़ में उनको ठौर मिलते जारहे हैं। यौधेय, मालव, आरक इत्यादि सब गणों के सामने संकट सिमटता सा आरहा है। प्रतिरोध का संगठन करना है। मुझको अब विदा लेनी होगी।

गर्दभिल्ल—तो क्या जनता के खेलकूद, उत्सव, स्थगित करने पड़ेंगे?

इन्द्रसेन—नहीं तुरन्त तो नहीं, परन्तु इनको संक्षिप्त कर देना होगा।

गर्दभिल्ल—देखूँगा—अब आप कहां जायँगे?

इन्द्रसेन—पहले विदिशा। वहां के रामचन्द्र नाग को सजग करना है। विन्ध्यखण्ड के तितर बितर जनपदों को एक माला में गूँथना है। उत्तम-भद्रों की स्वार्थ-मुग्धता का दमन भी एक समस्या है। दूसरी कठिन समस्या आन्ध्रनायक शातकर्णि को इस समय अश्वमेध यज्ञ करने से रोकना है। प्रयत्न करूँगा। आप मालवों को सचेत रखिए।

गर्दभिल्ल—हमलोग शातकर्णि से नहीं दबेंगे। उत्तम-भद्रों को ठीक करने के लिए हमारे मित्र यौधेय ही बहुत हैं।

इन्द्रसेन—उत्तम-भद्रों और यौधेयों की गुत्थी को सुलझाने के लिए थोड़ा सा समय चाहिए। शातकर्णि वीर, बुद्धिमान, और प्रबल है, परन्तु उसको छत्र, चँवर और सिंहासन की लालसा लग गई है। इस लालसा पर सहानुभूति के साथ विचार तभी संभव है, जब हम शक-पुलिन्दों को अपने देश से निकाल बाहर करदें।

गर्दभिल्ल—फिर भी आर्य, हम अपना अस्तित्व शातकर्णि के हाथ में नहीं सौंप देंगे।

इन्द्रसेन—गणतन्त्र नहीं नष्ट हो सकेंगे, भरोसा रखिए इस समय अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं। उनके समाधान में विलम्ब नहीं होगा। शीघ्र मिलूँगा। नमस्कार। उज्जैन निवासियो, नमस्कार। (जाते हुए लौटकर) राजन्य, खेलकूद की अतिशयता में मालवजन की शक्ति और उमङ्ग को अब और अधिक मत बिखरने दीजिए। ये दिन कुक्कुट लड़ाने के नहीं हैं।

गर्दभिल्ल—जनता मनोरञ्जन चाहती है। उससे शक्ति का वर्धन होता है, परन्तु आगे अधिक संयम के साथ काम लिया जायगा।

इन्द्रसेन—हूँ—ऊँ—आप प्रयत्नों में सफल हों, मेरी यही कामना है।

(जाता है। इन्द्रसेन को सब आदर पूर्वक विदा करते हैं।)

तीसरा दृश्य

(स्थान—उज्जैन नगर के बाहर, क्षिप्रा नदी का तट। समय रात्रि, अन्धकार। नेपथ्य में हवन कुण्ड में आग जल उठती है। पर्दे पर, भीतर चलने वाले कापालिकों की छाया पड़ रही है। कुछ कापालिक एक युवक को बँधा हुआ लाते हैं। उसके मुंह में कपड़ा ठूँसा गया है। वे उसको नीचे डाल देते हैं। दूसरी ओर से कालकाचार्य और सुनन्दा का प्रवेश।)

सुनन्दा—(धीरे से) वह देखिए आचार्य! वह क्या है? यह आग अपने पेट में किसी बीभत्स को छिपाए है। बकुल कहां होगा?

कालकाचार्य—मेरे पीछे पीछे आओ सुनन्दा।

(दोनों दबे पांव नेपथ्य की ओर हवन कुण्ड की दिशा में बढ़ते हैं। आग के धूमरे प्रकाश में वकुल इन दोनों को पहिचान लेता है। हिलता है, बंधनों के तोड़ने का उपाय करता है, परन्तु व्यर्थ। कुछ कहना चाहता है, किन्तु कंठ रुद्ध है। कालकाचार्य और सुनन्दा को अकस्मात अपने इतने निकट देखकर कापालिक हक्के बक्के से खड़े हो जाते हैं कालकाचार्य और सुनन्दा वकुल को पहिचान लेते हैं।

सुनन्दा—(तीक्ष्ण स्वर में) आर्य भूमि और मालवगण को कलंकित करने वाले कापालिको ! इस पिशाच कार्य को छोड़ो। किसी भी शास्त्र में इसके लिए समर्थन नहीं है। मुक्त करो इसको। जैन सन्यासी है।

कालकाचार्य—तुम लोगों को कीड़ों मकोड़ों की योनियों में जन्म लेकर दारुण यातनाएं सहनी पड़ेंगी। इस कुकर्म से विरत हो और ज्ञान के दीप से आगे का पन्थ परखो।

(घबराए हुए कापालिक स्थिर हो जाते हैं)

एक कापालिक—हमको तुमसे किसी भाव भी बुद्धि मोल लेने की अटक नहीं है। हटो यहां से। यह हाट या चौक नहीं है जहां हम अपने हाथ की खुजली तुम्हारे घुटे खोपड़ों पर न मिटा सकें। भागो नहीं तो तुम्हारा भी बलिदान किया जायगा।

सुनन्दा—(विनीत स्वर में) कापालिक, यह जो एक निस्सहाय और विवश प्राणी नीचे बँधा पड़ा है यह तुम्हारे सदृश ही देहधारी मनुष्य है। यदि तुम किसी भी शास्त्र में मनुष्य के बलिदान का समर्थन बतलादो तो इसके स्थान पर मैं आने को तैयार हूँ। मुझको बांधने की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मेरी देह को चाहे खंड खंड करके होम देना, अथवा

समूचा ही। तुम्हारा देवता यदि नर-बलि चाहता है तो उसको मेरे मान्स से सन्तुष्ट हो जाना चाहिए।

(कालकाचार्य का हाथ सहसा अपनी कमर पर जाता है, मानो खड्ग निकालना चाहता हो, परन्तु उसके पास कोई हथियार नहीं है।)

कालकाचार्य—(दांत पीसकर) ओह! (फिर संयत होकर एक क्षण उपरान्त) कापालिको, तुम्हारी समझ में यदि यह ऊँचा सिद्धान्त न समा पा रहा हो तो मैं तुम्हारे आचार्य पुरन्दर से बात करूंगा। कहां हैं वे? मैं उनको शास्त्रार्थ में परास्त करके रहूंगा।

एक कापालिक—हुं, आचार्य पुरन्दर से बात करेगा! आचार्य यहां इससे शास्त्रार्थ करने आयंगे!! यह उनको हराएगा!!! वे नगर में हैं। जा, वहां भी कुछ कापालिक तेरा सिर फोड़ने को मिल जायंगे।

कालकाचार्य—मूर्खो, राक्षसो, हमारे जीते जी तुम्हारा यह कुकृत्य सफल न हो सकेगा।

(कापालिक बध की इच्छा से कालकाचार्य को घेरते हैं। तब तक सुनन्दा वकुल के मुँह से कपड़े का ठूँस निकाल फेकती है। वकुल चिल्लाता है—'दौड़ियो, बचाइयो।' कुछ कापालिक सुनन्दा पर झपटते है।)

सुनन्दा—मैं सुखी हूँ कापालिको, मुझको मार डालो। वकुल तुम मुक्त हो!

(परन्तु कालकाचार्य या सुनन्दा पर शस्त्र उठाने का उनको साहस नहीं होता। वे एक स्थान पर एकत्र होकर संकेतों में कुछ परामर्श करते हैं। वकुल निरन्तर चिल्लाता है।)

कालकाचार्य—मारो हमको कापालिको। हाथ क्यों रुक गया?

एक कापालिक—बलिदान के लिये लाया गया पशु या नर यदि ऐसे समय पर बोल उठे तो वह एक घड़ी के लिए अवध्य हो जाता है। इसीलिए हम इसको यथेष्ट चिल्लाने दे रहे हैं।

कालकाचार्य—तुम्हारी अपेक्षा तो वन में भ्रमण करने वाली जातिया अच्छीं, क्योंकि वे ऐसे पशु या नर को जो वध के समय बोल उठे, फिर मारते ही नहीं।

(वकुल बंधन तोड़ने की चेष्टा करता है, परन्तु इतना जकड़ा हुआ है कि तोड़ नहीं सकता। वह निरन्तर चिल्लाता रहता है। कालकाचार्य और सुनन्दा उसके बचाने के लिए आतुर हैं, परन्तु अपने को असमर्थ पाते हैं।)

एक कापालिक—उपदेश की आड़ में तुम जंगली जातियों की निन्दा मत करो। वे सब भैरव की पूजा करती हैं और हमारी पक्षी में हैं। पकड़ो कापालिको इस मुँहचले को और इस छोकरी को। इनका भी बलिदान किया जायगा।

सुनन्दा—(पीछे हटकर) मुझको मत छूना। तुम अपना मन्त्र पढ़ो, मैं आग में कूदने को प्रस्तुत हूं। परन्तु इन दोनों को जाने दो। तुम्हारे और जंगली जातियों के भैरव क्या मुझ अकेली के रक्त मांस से संतुष्ट न हो जाएंगे?

(कापालिक उन दोनों को पकड़ कर बांध लेते हैं। उसी समय वकुल की पुकार सुनकर कुछ सैनिक और चाट द्रांगिक सहित आजाते हैं।)

द्रांगिक—यह सब क्या है? कौन चिल्ला रहा है? किसको पकड़ लिया गया है?

वकुल—मुझको मार डालने के लिए दुष्ट कापालिक पकड़ लाए! ये दोनों साधु मुझको बचाने के लिए आगए तो इनको भी बांधने का

प्रयास कर रहे हैं !! मुझको तो इतना कस दिया गया है कि मेरा अङ्ग अङ्ग फूटा जा रहा है !!! ओह !!!!

(शब्द की तुमुलता पर इधर उधर से अनेक कापालिक एकत्र हो जाते हैं ।)

एक कापालिक—हमको विधिपूर्वक अपना कार्य करने की स्वतंत्रता है । कोई नहीं रोक सकता ।

द्रांगिक—उज्जैन नगरी के इतने निकट ! महाकाल के मन्दिर के पड़ोस में !! मुक्त करो इनको ।

अनेक कापालिक एक साथ—असंभव ।

द्रांगिक—आप लोगों को विदित होना चाहिए कि नगरों और ग्रामों में तथा उनके पड़ोस में बलिदान बन्द कर दिए गए हैं ।

कापालिक—आप क्या जैन या बौद्ध हो, द्रांगिक ? हम लोग दिनमें तो बलिदान नहीं करते । यह रात है, क्या तुमको दिखलाई नहीं पड़ रहा है ?

द्रांगिक—रात में भी नहीं कर सकोगे ! यह उज्जैन है !! मनुष्यों का बलिदान !!! कभी नहीं । छोड़ो इन लोगों को ।

बकुल—अरे मेरे रस्से को तो खोल दो । खाल कट गई है ! रक्त बह रहा है ।

द्रांगिक—(बकुल को पास से देखकर और उसके सौंदर्य से और भी अधिक पसीज कर) तुम लोग कितने निठुर हो । भगवान शंकर ने सुन्दर प्रतिमाएँ क्या नष्ट करने के लिए बनाई हैं ?

एक कापालिक—शैव होकर तुम ऐसा कहते हो ! डूब मरो क्षिप्रा की धार में !!

द्रांगिक—शैव हूँ, परन्तु कापालिक नहीं हूं । सचेत सैनिको, चाटो, बंधन—मुक्त करो इन तीनों को ।

सब कापालिक—असम्भव। ये हमारे बन्दी हैं।

(कुछ और कापालिक आ जाते हैं।)

द्रांगिक—तुम सब लोग राजा के पास चलो।

एक कापालिक—हम अपने आचार्य के अतिरिक्त और किसी को राजा नहीं मानते। जिस किसी को आना हो यहीं आवे।

द्रांगिक—दो सैनिक इसी क्षण राजा के पास जाओ। कहना, द्रांगिक मेले में आए हुए लोगों की रखवाली के सम्बन्ध में घूमता हुआ क्षिप्रा के तट पर पहुंचा तो वह कोलाहल सुनकर तुम लोगों के साथ दौड़ा आया और इन तीन भिक्षुओं को इन क्रुद्ध कापालिकों से घिरा हुआ पाया, जो बलिदान के नाम पर इनका वध कर डालना चाहते हैं। शीघ्र जाओ।

सैनिक—जिस समय हम लोगों ने कोलाहल सुना एक चाट द्वारा राजा को सूचना उसी समय भेजदी थी। आपको स्मरण होगा।

द्रांगिक—तो भी जाओ। विलम्ब मत करो।

(दो सैनिकों का प्रस्थान। कापालिक उन तीनों को ले जाने के लिए खींचा तानी करते हैं। दूसरी ओर से गर्दभिल्ल का कुछ सैनिकों के साथ प्रवेश। साथ में जलती हुई मशालें।)

गर्दभिल्ल—क्या बात है द्रांगिक? ये इतने कापालिक यहाँ क्यों इकट्ठे हैं? अरे, और ये सन्यासी! धारा के अतिथि!!

एक कापालिक—धारा के! उत्तम भद्र!! हमारे चिर शत्रु!!! तबतो ये बलिदान के लिए और भी अधिक उपयुक्त हैं।

गर्दभिल्ल—ये सम्भवित जैन हैं। इनको जाने दो।

(पुरन्दर का प्रवेश। पुरन्दर स्वस्थ छरेरे शरीर का मनुष्य)

सब कापालिक—आचार्य की जय हो।

(गर्दभिल्ल नमस्कार करता है)

पुरन्दर—क्या है राजन्य ! मैंने अभी अभी समाधि खोली और कोलाहल सुन कर चला आया।

एक कापालिक—ये तीनों हमारे बन्दी हैं। द्रांगिक व्यर्थ ही हमारी भर्त्सना कर रहा है।

गर्दभिल्ल—ये तीनो बौद्ध या जैन सन्यासी हैं। उज्जैन में अवध्य हैं। इनकी स्वतन्त्रता भी अबाध्य है।

एक कापालिक—परन्तु ये उत्तम भद्र हैं और हमारे बन्दी हैं।

गर्दभिल्ल—यहां विधान मालव गण का है न कि कापालिकों का।

पुरन्दर—परन्तु उत्तम भद्र हम सबके परम शत्रु हैं। इसलिए जिस किसी के हाथ पड़ जांय उसी के बन्दी हैं। राजन्य, आपने देखा नहीं, इन्होंने हमारे योग कार्य में कितनी बाधा डाली थी ?

कालकाचार्य—सन्ध्या समय हमने जो कुछ किया था वह धर्म कार्य था। इस समय हम कापालिकों को अधर्म करने से रोकने को आ पहुचे। हम जो कुछ कर रहे हैं वह धर्म है। तुम लोग जो कुछ कर रहे हो वह अधर्म और अनीति है, दुराचार है। सबके सब नर्क जाओगे। रौरव नर्क की यातनाएं सहोगे।

पुरन्दर—हमारे युद्ध देवता कार्तिकेय का रण वाहन मयूर तुम सरीखे तुच्छ कृमि कीट और सर्पों को यों ही चुग जाता है। तुम लोग हमारे बन्दी हो। बक बक की तो जीवित काट कर फेंक दूँगा।

द्रांगिक—आचार्य, आप के कापालिक इन तीनों को बलिदान के लिए पकड़े हुए हैं। इनका बलिदान नहीं हो सकता।

गर्दभिल्ल—बलिदान नहीं हो सकता। और न इनको किसी भी प्रकार का त्रास ही दिया जा सकता है। यह सब हमारे गण के नियमों के प्रतिकूल है।

पुरन्दर—(सोचकर) कुछ भी हो ये बन्दी रहेंगे। इनका बध भी न हो, परन्तु बन्दी अवश्य आजन्म रहेंगे। इन्होंने हमारे यज्ञकार्य को विध्वन्स करने में कोई कसर नहीं लगाई। ये हमारे बन्दी निःसन्देह रहेंगे।

सब कपालिक—ऐसा ही होगा। ऐसा ही होगा। हम इनको ले जायंगे।

गर्दभिल्ल—अच्छा ये बन्दी रहेंगे, परन्तु उज्जैन के मालवगण के।

सुनन्दा—हमारा अपराध ?

वकुल—हमारा अपराध ?

कालकाचार्य—हमने किया क्या है ?

वकुल—हमतो मेले में भिक्षाटन करते हुए पहुंचे थे, हमने तो कोई भी अपराध नहीं किया।

पुरन्दर—निकले थे भिक्षाटन को और डालने लगे यज्ञों में विघ्न !

गर्दभिल्ल—क्या किया है, इसका न्याय पीछे होगा। इस समय इस विषय पर तर्क भी नहीं किया जायगा।

पुरन्दर—(ढलकर) हम लोग इस बात पर सहमत हैं कि ये तीनों आपके बन्दी रहें, परन्तु स्पष्ट वचन दीजिए कि आप इनको मुक्त नहीं कर देंगे।

सब कापालिक—वचन दीजिए। शपथ लीजिए।

गर्दभिल्ल—मैं वचन देता हूं।

पुरन्दर—अच्छा तो ये तीनों अब आपके बन्दी हुए। कापालिको, चलो अपने आश्रम को।

(नेपथ्य की आग बुझ जाती है)

एक कापालिक—परन्तु ये भागने न पावें।

गर्दभिल्ल—विश्वास रखिए।

पुरन्दर—और इनका न्याय इस अपराध के सम्बन्ध में होगा कि ये उत्तमभद्र हैं जो श्रावक रूप में हमारा मख विनाश करने के लिए उज्जैन आए हैं, कपटी और धूर्त हैं।

कालकाचार्य—हम तुम सबको प्रबोध देने के लिए आए हैं। यदि यही हमारा अपराध है तो हम तीनों स्वीकार करते हैं। न्याय के छद्म की—कोइ आवश्यकता नहीं। करो हमारा वध, अधर्मियो! पिशाचो!!

पुरन्दर—(**दांत पीसकर**) राजन्य, इन लोगों को अपना अपराध स्वीकार है। अनुसन्धान की आवश्यकता नहीं है। अब इनको दण्ड दो। कम से कम जीभ तो इनकी काट ही डाली जानी चाहिए।

गर्दभिल्ल—मैं अकेला दण्ड नहीं दे सकता। उज्जैन के प्रमुख जन समिति में बैठेंगे। वे ही निर्धार करेंगे। ये अब हमारे बन्दी हैं। दण्ड के निश्चय होने तक ये लोग मेरे अधिकार में रहेंगे।

पुरन्दर—मालवगण में हमारा भी कुछ स्थान है।

गर्दभिल्ल—तब समिति में बैठकर निर्णय करिए। आप स्वयं आरोपी, न्यायाधीश और दण्डिक—सब एक साथ,—नहीं बन सकते। आपको शोभा नहीं देगा!

पुरन्दर—उज्जैन निवासी यदि हम लोगों के त्रिशूल और कुठार द्वारा अपने शत्रुओं से रक्षा चाहते हैं तो उनको हमारा निर्णय मानना चाहिए।

गर्दभिल्ल—(**क्षुब्ध स्वर में**) क्या है आपका निर्णय आचार्य? न्याय की सापेक्षता का नहीं, न्याय की उपेक्षा का निर्णय?

(**सुनन्दा आशान्वित होती है। वकुल उत्कंठित और कालकाचार्य उद्विग्न हैं।**)

पुरन्दर—(एक क्षण सोचकर) यही कि हम इनके लिए वध का दण्ड तो कुछ कठोर समझते हैं, परन्तु आजन्म कारावास उपयुक्त रहेगा !'

गर्दभिल्ल—(**ढले हुए स्वर में**) उज्जैन निवासी जैसा उचित समझें।

पुरन्दर—और आप स्वयं ?

गर्दभिल्ल—(**सोचकर, फिर सुनन्दा की ओर देखते हुए**) मैं उचित और अनुचित की स्पर्द्धा में व्यस्त हूँ।

कालकाचार्य—मैं बन्दी होना स्वीकार नहीं करता।

कापालिक—हुं !

गर्दभिल्ल—ले चलो द्रांगिक इन लोगों को। ये तीनों मेरे भवन में पृथक पृथक बन्द होंगे।

पुरन्दर—आपके भवन में ! साधारण कारावास में क्यों नहीं ?

गर्दभिल्ल—क्योंकि ये राजकुल के लोग हैं। क्योंकि ये जैन सन्यासी हैं।

पुरन्दर—हां ! राजकुल !! राजकुल !!! अस्तु। कहीं भी बन्द करो, परन्तु इस रोग को बाहर मत निकलने देना। और, न फैलने ही देना। नहीं तो—नहीं तो—हम अपने मयूर को प्रमत्त कर सकते हैं, यह स्मरण रहे। आओ कापालिको मेरे साथ।

(**कापालिक पुरन्दर के साथ जाते हैं**)

एक कापालिक—(**उन तीनों की ओर देखता हुआ**) हमारा मयूर आज मत्त होते होते रह गया।

गर्दभिल्ल—(**कापालिकों के चले जाने पर**) उस मुनि के बन्धन खोलो द्रांगिक।

(द्रांगिक वकुल की रस्सी खोल देता है)

गर्दभिल्ल—द्राँगिक, अब इन तीनों को मेरे भवन में सम्मानपूर्वक वन्दी करदो। भोजन और शयनादि का भी उचित प्रबन्ध कर देना। तीनों पृथक पृथक रखे जायंगे।

सुनन्दा—वन्दीगृह !

कालकाचार्य—स्वच्छ पवन को आरुद्ध !

सुनन्दा—दूसरों की रक्षा के निमित्त जलते हुए कुण्ड में फेका जाना, भूखे गीधों को अपनी देह के मान्सपिण्ड दे देना, चीटियो की प्यास को अपने रक्त से बुझाना वन्दीगृह में अलग अलग रहने से अधिक अच्छा है।

गर्दभिल्ल—अलग अलग ही रहना होगा, परन्तु आप ओगो को किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं हो पायगा। यह व्यथा थोड़े ही समय की है देवी। मैं विवश हूँ।

(वह सुनन्दा को आधे क्षण अर्थ भरी दृष्टि से देखता है। सुनन्दा दूसरी ओर मुँह फेर लेती है)

वकुल—हमारा न्याय कब तक होगा राजन्य ?

कालकाचार्य—न्याय ! वधिकों से न्याय की आशा !!

गर्दभिल्ल—शीघ्र होगा। मैं सहायता करूँगा।

(वे सब जाते हैं। सुनन्दा मुँह फेरते ही देखती है कि गर्दभिक उसकी ओर दृष्टि किए हुए चल रहा है।)

सुनन्दा—(गर्दभिल्ल के चेहरे का निरीक्षण सा करने के उपरान्त ऊपर की ओर आंख उठाकर) हे भगवन !

(सब का प्रस्थान)

चौथा दृश्य

[स्थान उज्जैन। गर्दभिल्ल का भवन। एक कक्ष में सुनन्दा है, दूसरे में कालकाचार्य और तीसरे में वकुल। उनके कक्ष बड़े हैं और उनमें गोखें हैं। विश्राम के लिए चौकियां, मञ्च और पर्यङ्क हैं। बिछाई रंग बिरंगे पत्थरों से जड़ी हुई और स्वच्छ। दीवारों पर महादेव, पार्वती, एकमुखी और पंचमुखी शिव तथा अर्द्ध नारीश्वर के चित्र हैं। कुछ चित्र जंगली पशुओं के आखेट सम्बन्धी हैं। कुछ चित्र यज्ञों, मखशालाओं और युद्ध विषयक हैं। एक ओर बौद्ध और जैन प्रसंगों के भी चित्र हैं। तीनों वन्दी ऐसे कक्षों में हैं जहां से न वे एक दूसरे को देख सकते हैं और न कोई बात कर सकते हैं।]

सुनन्दा—जी चाहता है कुछ गाऊँ, परन्तु अच्छा नहीं लगता। अपने ही स्वर कान को खाने से लगते हैं। राजा जब बात करते हैं तब मन चाहता है कि अधिक न ठहरें। जब चले जाते हैं तब लगता है कुछ बातें और करते। शैव होने पर भी उनके हृदय में कुछ अनुकम्पा है। ये सच्चे धर्म में दीक्षित किए जा सकते हैं।

(गर्दभिल्ल का प्रवेश। परस्पर अभिवादन)

गर्दभिल्ल—(विनम्र स्वर में) आप किससे बात कर रही थीं राजकुमारी?

सुनन्दा—यहाँ मेरे प्रतिबिम्ब के सिवाय और कौन है?

गर्दभिल्ल—आपके आलोक से यह भवन जगमगाता रहता है। आपके गायन और बोलों से इस भवन में मधुर मधु भर जाता है। इस भवन की जिन वस्तुओं को आप छू भर देती हैं उनको भाषा मिल जाती है—

सुनन्दा—(मन की उठती हुई गुदगुदी को नियंत्रित करती हुई) यदि मैं कुरूप होती तो ?

गर्दभिल्ल—तो आपके मधुर कंठ और कठोर तप पर उसका क्या प्रभाव पड़ता ?

सुनन्दा—तो भी आप इसी प्रकार बात करते !

गर्दभिल्ल—रूप और चरित्र के सामने कौन नहीं झुकता ?

सुनन्दा—(शिथिल स्वर में) मैं वन्दिनी हूँ राजन्य ।

गर्दभिल्ल—मै आपको इसी पल स्वतन्त्र किए देता हूँ, राजकुमारी । उज्जैन की जनता फिर भले ही इसके बदले में मेरे टुकड़े टुकड़े कर डाले ।

सुनन्दा—(सहसा) हुँ ! क्या ? (वह टहलने लगती है ।)

गर्दभिल्ल—राजकुमारी, आप इस कक्ष में परतन्त्र होतीं हुई भी स्वतन्त्र हैं और मैं स्वतन्त्र होते हुए भी वन्दी हूँ । हम लोग अपनी परस्थिति को एक दूसरे से परिवर्तित करलें तो कैसा हो ?

सुनन्दा—(स्थिर होकर) मैं समझी नहीं ।

गर्दभिल्ल—यदि मैं अपने हृदय के कारागार में आपको बन्द करलूँ तो ? (दृढ़ता के साथ उसकी ओर देखता है ।)

सुनन्दा—इससे आपकी स्वतन्त्रता में कौनसी बाधा पड़ेगी ?

गर्दभिल्ल—यदि आप मुझे किसी वैसे ही स्थान में वन्दी करदें तो मुझको सुख ही सुख मिलेगा ।

सुनन्दा—मुझको चाहे दुख ही दुख हो । मेरी स्थिति से क्या आप सुखी नहीं हैं ?

गर्दभिल्ल—मैं सौगन्ध खाता हूँ राजकुमारी, मैं दुखी हूं । हृदय के कारागार की निबिड़ता तभी मधुर होती है जब दो व्यक्ति एक दूसरे के वंदी हों ।

सुनन्दा—मैं श्राविका हूँ। स्वतन्त्रता का संदेश दे सकती हूं। न तो मैं स्वयं ही परतन्त्र हूं और न दूसरों को दासता की बेड़ियां पहना सकती हूं।

गर्दभिल्ल—मैं आपका प्रदान किया हुआ कोई भी सन्देश ग्रहण कर सकता हूँ।

सुनन्दा—आप भगवान की आज्ञा के अनुगामी होने को तत्पर हैं? आप अहिंसाव्रत का पालन करेंगे?

गर्दभिल्ल—कोयल की कूक, लाल मुनैयों की तान और शुक-सारिकाओं की कहानियां प्राण सा देती हैं। फूलों की निःशब्द भाषा और सौरभ का अनाहत नाद मेरे हृदय के परकोटे हैं। मुझको जिस मत में यह सब मिल जाय वही मुझको स्वीकृत है।

सुनन्दा—इस परकोटे में कितने जीव जन्तु अभी तक वन्दी किए जा चुके हैं राजन्य?

गर्दभिल्ल—केवल एक—जो मेरी रानी है। अपने यहां दूसरी के लिए कोई निषेध है भी नहीं।

सुनन्दा—आप पशुओं की तरह सच्चे हैं। मै प्रसन्न हूँ। पशुओं पर मुझको दया है।

गर्दभिल्ल—तो पशु ही समझ कर मुझ पर दया करती रहिए, और स्नेह भी।

सुनन्दा—तब आपको ज्ञान-मार्ग के अपनाने में कौन सी बाधा दिखलाई पड़ती है?

गर्दभिल्ल—मैं शैव हूं। अधिकांश उज्जैन निवासी और मालवगण शैव हैं। मैं उनका राजन्य—सेनापति—हूँ। मेरे खड्ग और धनुषबाण मयूरगामी की पूजा करते हैं। अहिंसाव्रती होने पर मैं क्या रह जाऊंगा?

सुनन्दा – अर्थात् आप सब कापालिक हैं। इसलिए स्पष्ट न कहते हुए भी आपका संकेत है कि हमारे मत के नहीं हो सकते।

गर्दभिल्ल—मैं कापालिक नहीं हूँ। आप इस बात को जानती हैं। यदि मैं बौद्ध या जैन हो जाऊँ तो आप अपने हृदय का बन्दीगृह मुझको दे सकेंगीं ?

सुनन्दा—आपको मैं भगवान की अखण्ड मुक्ति दे सकूंगी। आप सन्यासी बन कर जो राज्य स्थापित करेंगे उसमें किसी प्रकार के भी कारागार को रखने की आवश्यकता न रहेगी।

गर्दभिल्ल—शक पुलिन्दों की बाढ़ पर बाढ़ आरही है। उन्होंने सिन्धुसौवीर, पञ्चनद, काश्मीर, सुराष्ट्र और लाट, मथुरा और पद्मावती पर अधिकार कर लिया है। अब वे मालव, यौधेय, आरक इत्यादि गणों को ग्रसना चाहते हैं। जहां जैसा लाभ दिखलाई पड़ता है वैसे ही वे जैन या बौद्ध मत में ढलने का ढोंग रच लेते हैं, परन्तु वे असीम जन–पीड़न करते हैं और वर्ण–संकरता बढ़ाते हैं। बिना धनुषबाण के इनका विरोध कैसे किया जा सकेगा देवी ?

सुनन्दा—विरोध करने की बात ही क्या रहेगी ? सब मिल कर प्रज्ञा का प्रकाश फैलायंगे। देव–प्रिय चन्द्रगुप्त मौर्य ने किया था। फिर हो सकता है।

गर्दभिल्ल—चन्द्रगुप्त मौर्य आर्य थे। ये अनार्य हैं। जैन और बौद्ध हो जाने पर भी ये लोग हत्या, हिंसा और रक्तपात को नहीं छोड़ते। उनके साथ हमारा अनुराग कैसे हो सकता है ?

सुनन्दा—ज्ञानी होने पर आप इस समस्या पर विचार कर सकते हैं।

गर्दभिल्ल—मैं मत-परिवर्तन के लिए प्रस्तुत हूँ। परन्तु आपको सन्यासियों का मठ छोड़ कर राजा के भवन को अपना आश्रम बनाना

पड़ेगा। आपने मुझको सच्चे पशु की उपाधि पहले ही दे दी है। (हँसता है।)

सुनन्दा—(**मुस्कराकर**) मैं मठों और सन्यासियों की संख्या बढ़ाने के लिए घर से बाहर निकली हूँ न कि कम करने के लिए।

गर्दभिल्ल—यदि मैं अपने प्राणों की होड़ लगाकर आपको इस पत्थर-ईंट वाले वन्दीगृह से मुक्त करदूँ तो आप क्या इस भवन में स्वतन्त्र विचरण करती हुई, प्रभा को नहीं बिखेर सकेंगी ? मैं आपका शिष्य और जीवन सहचर हो जाऊँगा।

सुनन्दा—आपके मालव कापालिक तमिस्रा को छोड़ कर ज्ञान के आलोक में आने को सहमत हो जाएँगे ?

गर्दभिल्ल—सब तो नहीं, परन्तु अनेक ऐसा करेंगे। किन्तु एक प्रार्थना है—अभी प्रकट रूप से ऐसा नहीं हो सकेगा। मैं गुप्त रूप से मत परिवर्तित कर लूंगा। जब उपयुक्त अवसर आयगा, तब प्रकट हो जाऊँगा।

(**सुनन्दा फिर मुस्कराती है।**)

सुनन्दा—ज्ञान की भी चोरी ! सूर्य की किरणों को भी मुट्ठी के भीतर बंद कर रखने का साहस ! तान को तार के ही भीतर गुप्त रखने का प्रयत्न !! विद्युत को मेघ से प्रच्छन्न रखने का प्रयास !!! मै इसको नहीं सह सकती। यह प्रवन्चना है। छल है।

गर्दभिल्ल—पशुओं पर दया करने वालों को क्या मनुष्यों पर दया नहीं करनी चाहिए ? सोचिए, मालवगण मुझको व्यर्थ करके छोड़ेंगे। मैं वैसा राजा नहीं हूँ, जैसे शकों में या किसी किसी आर्यजनपद में हैं। वे लोग मनमानी कर सकते हैं मैं नहीं कर सकता। गण की जनता मुझको अपने रोष के प्रवाह में धकेल देगी।

सुनन्दा—(**एक क्षण उपरान्त**) सोचूँगी।

गर्दभिल्ल—(आशा से पुलकित होकर) उज्जैन की समिति ने आप लोगों को दीर्घ समय तक वन्दी रखने का निर्णय किया है। मैं ऐसा उपाय करता हूँ जिससे आचार्य कालक और वह यवन भिक्षु—वकुल—तुरन्त बाहर हो जाएँ।

सुनन्दा—और मैं?

गर्दभिल्ल—आपको सोचने के उपरान्त कुछ कहना है न? मैं अब उन दोनो के पास जाता हूँ।

(सुनन्दा सोचती रहती है। गर्दभिल्ल का शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान। सुनन्दा वाले कक्षों का द्वार बंद हो जाता है। भवन के दूसरी ओर कालक और वकुल के कक्ष हैं। उन कक्ष के सामने गर्दभिल्ल का दूसरी ओरसे प्रवेश। वह इस कक्ष का द्वार खोलता है।)

गर्दभिल्ल—आचार्य तथा यवन युवक, मैं यहां आया हूँ। आप आंगन में आ जायँ।

(कालकाचार्य और वकुल अपने अपने कक्षों से बाहर आते हैं।)

कालकाचार्य—आपके प्रमुखों ने तथा आपने हमारे लिए क्या निर्णय किया है?

गर्दभिल्ल—आप लोगों के लिए दीर्घ कारावास की आज्ञा दी है।

वकुल—दीर्घ कारावास! हे भगवान। अन्धेर है! अत्याचार है!! इन मुखियों को इतना समझाया बुझाया, परन्तु उनका विवेक जाग्रत न हुआ!

गर्दभिल्ल—सुनिए, सुनिए मैं अभी राजकुमारी को एक आश्वासन देकर आया हूँ।

कालकाचार्य—कौन राजकुमारी?

वकुल—सुनन्दा न? क्या आश्वासन दे आए हैं आप!

कालकाचार्य—वह राजकुमारी नहीं है, केवल श्राविका है ।

गर्दभिल्ल—मैं राजकुमारी को आश्वासन दे आया हूँ कि आप लोगों के निकल भागने की सुविधा कर दूंगा । वे यहीं रहेंगी क्योंकि शीघ्र मेरी पटरानी होने वाली हैं ।

कालकाचार्य—असंभव ! अत्याचारी ! नीच !! अधम !!! नर्क के कीड़े !!!!

वकुल—आचार्य, शान्ति से काम लीजिए । राजन्य, वह कौनसी सुविधा है ?

गर्दभिल्ल—आचार्य तो रुष्ट हो गए हैं । यों ही व्यर्थ ।

कालकाचार्य—पापिष्ठ, प्रमुख सुनन्दा को मुक्त करने के पक्ष में थे और हम दोनों को वन्दीगृह में डाले रहने के, परन्तु तूने विरोध किया—

गर्दभिल्ल—मैंने तो हित की ही कामना की थी । सुनन्दा अकेली को छोड़ देने से फिर वह कहां जाती ?

कालकाचार्य—धूर्त ! नीच !! चाण्डाल !!!

वकुल—मुझसे बात करिए । वे इस समय आपे में नहीं हैं ।

कालकाचार्य—चुप मूर्ख, गर्दभिल्ल, मैं सुनन्दा से बात करना चाहता हूँ ।

वकुल—ठहरिए—

गर्दभिल्ल—राजकुमारी से बात नहीं हो सकेगी ।

वकुल—वह सुविधा क्या है ? उस सुविधा की बात स्पष्ट कीजिए ।

गर्दभिल्ल—मै पहरा शिथिल करे देता हूं । कौशेय की डोर देता हूँ । उसके सहारे निकल भागिए । मैं समिति के निर्णय से सहमत नहीं था, इसलिए आप लोगों को यह सुगम योजना देता हूँ ।

कालकाचार्य—मेरी बहिन—उस श्राविका का क्या होगा ? वह अल्प-वयस्क है । (**रुद्ध कण्ठ से**) हे भगवान !

गर्दभिल्ल—वह सुखपूर्वक मेरे सहवास में इसी भवन में रहेंगी। आप सुचित्त हों आचार्य।

कालकाचार्य—तुम्हारे सहवास में ! पिशाच।

वकुल—ठहरिए आचार्य। हमको यह योजना स्वीकार है।

(कालकाचार्य चुप है।)

गर्दभिल्ल - मैं अभी डोरी लाता हूं।

(गर्दभिल्ल का प्रस्थान।)

वकुल—इतने चतुर होकर आचार्य, ऐसी असावधानी ! हम लोग निकल तो चलें, फिर सुनन्दा की निष्कृति का उपाय तो शीघ्र कर लेंगे। (कालकाचार्य चुप) देखिए, अपनी सहायता के लिए सम्पूर्ण उत्तमभद्र हाथ में वज्र को पकड़ेंगे। मथुरा और पद्मावती के शक महाक्षत्रप सिन्धुसौवीर के शाहानुशाही और सुराष्ट्र के क्षत्रप शक तथा यवन मालवों पर टूट पड़ेंगे। उत्तमभद्रों का जैन और बौद्ध मत तथा सुनन्दा—का इन सबका एक साथ ही उद्धार होगा।

कालकाचार्य—(धीमें गिरे हुए स्वर में) मुझको इस समय कुछ नहीं दिखलाई पड़ रहा है वकुल। मेरी बहिन कापालिक गर्दभिल्ल के हाथ में ! उसकी दासी होकर !! हा हन्त !!! (सिर पीटता है।)

वकुल आचार्य, आपका महान मस्तक इस तरह की ताड़ना के लिए नहीं सृजा गया है। वह हमारे अस्त्रों का आगार है। सचेत आचार्य ! वह आरहा है।

(कालकाचार्य संभल जाता है। गर्दभिल्ल का रेशम की डोरी लिए हुए प्रवेश।)

गर्दभिल्ल—मैंने अपना वचन निभाया आचार्य। अब आप क्रोध का शमन करें। आप देख रहे होंगे कि मैं आप की मित्रता का पात्र हूं।

(कालकाचार्य दांत पीसकर सिर नीचा कर लेता है।)

वकुल—निस्सन्देह राजन्य, निस्सन्देह। धन्यवाद। डोरी दीजिए।

गर्दभिल्ल—मैं पहरुओं को पीने के लिए मद्य दे आया हूँ। जैसे ही वे सोजायं आप खिड़की से बाहर हो जाइए। मैं अब जाता हूँ। नमस्कार आचार्य।

वकुल—नमस्कार राजन्य, नमस्कार।

गर्दभिल्ल—आचार्य अब भी क्रुद्ध जान पड़ते हैं। उन्होंने कुछ नहीं कहा।

कालकाचार्य—(गर्दन ऊँची करके) जो कुछ भी हो—जैसा कुछ भी हो। अस्तु। (**शिथिल स्वर में**) नमस्कार। मैं चिन्ता में था, इसलिए आचार को बिसर गया। हूँ—ऊँ—यह सम्पूर्ण मालवगण का निर्णय है! हुं।

गर्दभिल्ल—जी। (गर्दभिल्ल शीघ्र जाता है।)

वकुल—आचार्य, कुछ वस्त्र ले लीजिए, मैं पीठ पर गठरी बांध लूँगा। तब तक पहरुए सोए जाते हैं। फिर खिड़की से निकल जाने में बाधा नहीं पड़ेगी।

कालकाचार्य—यहां से कहां चलेंगे?

वकुल—मैंने अभी अभी मन में योजना बनाली है। पहले भद्रावती फिर पद्मावती, मथुरा और उसके उपरान्त उत्तर पश्चिम की ओर। वहां से सिन्धुसौवीर।

कालकाचार्य—मेरी बहिन, उस दीन कन्या का क्या होगा वकुल? (**दबे हुए स्वर में**) हा!

वकुल—मालवों का संहार और सुनन्दा का उद्धार। तैयार होजाइए। विलम्ब मत करिए। (**वकुल मुक्ति के दीर्घ उच्छ्वास के**

साथ सुनन्दा को छोड़ जाने पर निराशा की छोटी सी सांस लेते हुए) बहिन सुनन्दा को शीघ्र छुटकारा मिलेगा । (दांत पीसता है)

(वे दोनों आवश्यक वस्त्रों की गठरी बांधकर एक एक करके खिड़की के बाहर डोरी के सहारे उतर कर अंधेरे में विलीन हो जाते हैं । डोरी खिड़की में बँधी छोड़ देते हैं ।)

(दूसरे पार्श्व से गर्दभिल्ल का धीमी आहट के साथ प्रवेश)

गर्दभिल्ल—(कक्ष के भीतर जाकर और देखकर) चले गए । अब मैं डोरी को छुटा कर हाथ में करूँ । किसी ने देख लिया तो पता लगा लिया जावेगा कि उद्धार के लिए कौशेय की डोरी का साधन जुटाया गया था । (डोरी की गांठ छोड़कर अपने हाथ में करता है ।)

पांचवां दृश्य

[स्थान—गर्दभिल्ल के भवन का एक भाग । समय रात्रि । एक ओर से गर्दभिल्ल आता है । उसके आते ही सुनन्दा का प्रवेश ।]

सुनन्दा— (कुछ अचम्भे के साथ) आप कहां !! कैसे !!!

गर्दभिल्ल—राजकुमारी, आपको शुभ समाचार देने के लिए आया हूं । आचार्य कालक और यवन—यवन बकुल उद्धार पा गए । वे अब तक दूर भी निकल गए होंगे ।

सुनन्दा —और मैं यहां अकेली रह गई ! राजन्य, मैं भी जाना चाहती हूं । क्या मेरा उद्धार नहीं कर सकते ? मैं अपनी स्वतन्त्रता चाहती हूँ । मैं अपने भाई के पास पहुंच जाना चाहती हूँ । मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए ।

गर्दभिल्ल—आप दुःखी न हों। वे दोनों न जाने कहां जा छिपे होंगे, या, चले जा रहे होंगे। आप उनको खोजने के लिए निकलेंगी तो वे दोनों, आप और मैं भी—चारों के चारों, मारे जाएँगे। क्रुद्ध मालव हमको, एक को भी न छोड़ेंगे।

सुनन्दा—तो क्या यहां सब कापालिक ही कापालिक हैं? क्या उज्जैन में कोई बौद्ध अथवा जैन नहीं हैं?

गर्दभिल्ल—सब कापालिक नहीं हैं। बौद्ध तथा जैन अनेक हैं, परन्तु अश्वक, पदाति इत्यादि सैनिक शैव हैं, और उनमें भी अधिकांश कापालिक। जो शैव कापालिक नहीं हैं वे कापालिकों के सहायक बन जायँगे।

सुनन्दा—आप तो राजा हैं, क्या आप उनका दमन नहीं कर सकते?

गर्दभिल्ल—मैं राजा नहीं हूं केवल राजन्य हूं। जता भी चुका हूँ। जनमत चाहे सुमार्ग पर हो चाहे कुमार्ग पर उसको अपनी इच्छा के अनुसार चलाने का साधन और बल मुझको प्राप्त नही है। युद्ध हो उठे तो अवश्य अनेक अधिकार अपने आप मेरे हाथ में आ जायेंगे, परन्तु वह दूर की बात है। आप, न तो दुखी हों और न, हठ करें। थोड़ा धैर्य धरें। शीघ्र ही आपका और मेरा जीवन उन्नत होगा।

सुनन्दा—समझ में नहीं आता अब मैं क्या करूँ।

गर्दभिल्ल—आपको सखी सहेलियां मिलेंगीं। आप उनके साथ गाएँ। संसार में जितने सुन्दर पुष्प हैं उनकी नवीन सुकुमारता और सुगन्धि से अपने सौन्दर्य सौरभ की होड़ लगाएँ। आप अपने अङ्ग-अङ्ग को फूलों से सजाकर फूलों को और मुझको कृतार्थ करें।

सुनन्दा—(**निर्बल स्वर में**) मैं यह भाषा नहीं सुनना चाहती। छोटी बातों को बड़े शब्दों में मत कहिए।

गर्दभिल्ल—मेरे हृदय में और कोई भाषा ही नहीं, परन्तु यदि वह आपको बुरी लगती हैं तो मैं अपने उस हृदय को मरोड़ कर फेंक दूंगा जहां उसका जन्म और निवास है।

सुनन्दा—(उसकी बात को ठीक ठीक न समझकर) तो क्या आप आत्मघात करेंगे? इससे बढ़कर और कोई पाप नहीं है। मैं निवारण करूँगी। आपको ऐसा नहीं करने दूँगी।

गर्दभिल्ल—(उसके न समझने से लाभ उठाता हुआ) मैं अवश्य आत्मघात करूँगा। मुझको पद और अधिकार कुछ नहीं चाहिए। यदि आप अपना प्रेम मुझको दे सकेंगीं तो मैं अपने शरीर को ज्ञान के लिए बचा लूँगा। अन्यथा इसके टुकड़े टुकड़े कर डालूंगा।

सुनन्दा—(भयभीत होकर) आप क्या कह रहे हैं! प्रेम सदृश क्षुद्र और हीन वस्तु के लिए आत्मघात!

गर्दभिल्ल—प्रेम के लिए तो अपना शरीर क्या, संसार भर को मिटा सकता हूँ।

सुनन्दा—(कुछ समझकर) जो संसार भर को मिटाने की दम भरता है वह न तो मनुष्य के प्रेम को पा सकता है और न देवताओं के प्रेम को। और इस प्रकार का प्रेम कृत्रिम तथा व्यर्थ होता है।

गर्दभिल्ल—(झेंपकर) आवेश में उस प्रकार की बात मेरे मुँह से निकल गई। क्षमा कीजिएगा। (सिर उठाकर) परन्तु आत्मवध के विषय में मेरा निश्चय पक्का है। अडिग है।

सुनन्दा—(यथार्थता को समझकर) मैं किसी भी प्रवंचना में नहीं आ सकती। (तीव्र स्वर में) आप क्या बलात्कार करेंगे?

गर्दभिल्ल—(घबराकर) एं! क्या? आप क्या मुझको ऐसा नीच समझती हैं? असंभव। यदि आपका स्वेच्छापूर्वक प्रेम पा गया तो

मेरा जीवन सार्थक हो जायगा। यदि न पा सका तो मेरा वह निश्चय मुझसे सम्बन्ध रखता है। आपको क्या प्रयोजन? मरने के पूर्व आपकी दया की भीख मांगने नहीं आऊँगा। आप केवल सुन लेंगी कि कभी कोई था, और, अब नहीं रहा।

सुनन्दा—मेरा सिर दूख रहा है, आप जायं।

गर्दभिल्ल—मैं जाता हूं राजकुमारी। आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपकी अनुमति पाए बिना आगे सामने नहीं आऊंगा। परन्तु बिना आपकी अनुमति के, और आपके जाने बिना, दर्शनों की चोरी अवश्य कभी कभी कर लिया करूंगा। (**शीघ्र प्रस्थान।**)

सुनन्दा—(**टहलते हुए**) कदाचित् कोरा छल नहीं है। इस दुष्ट नगरी में मेरा और कोई भी नहीं है। यदि गर्दभिल्ल इस प्रकार की बातें न करे तो अब यहां यही एक मेरा हितू है। कहीं सचमुच आत्मघात न कर बैठे।

छटवां दृश्य

[स्थान उज्जैन नगर का चौक। चौक से विस्तृत मार्ग नगर के भिन्न भिन्न भागों को गए हैं। मार्गों के दोनों ओर भवन, प्रासाद और अट्टालिकाएं। एक ओर से कुछ बौद्ध साधुओं और श्वेताम्बर जैनों का प्रवेश। बौद्ध श्रमण सिर घुटवाए हैं और नारंगी रंग की धोती पहिने हैं। आवार भी उनका उसी रङ्ग का है। श्वेताम्बरों के वस्त्र श्वेत हैं। वे सिर ढके हुए हैं। जिस कपड़े से सिर ढका हुआ है उसी से आंखे, नाक और ओठों के अतिरिक्त मुँह भी ढका है। समय—दिन]

एक श्रमण—उन दोनों को कोई देवता वंदीगृह में से उठा ले

श्वेताम्बर—हां एक प्रकार से ठीक है। देवता ने बुद्धि दी। बुद्धि ने योजना बनाई। योजना ने हाथ पैर सक्रिय किए, सक्रियता को शक्ति मिली। उस शक्ति ने एक रूप धारण किया। फिर कारागार में से तिरोहित हो जाना एक छोटी सी ही बात तो रह गई।

श्रमण—किसी बात पर भी विश्वास न करना, केवल तर्क, युक्ति और प्रत्यक्ष प्रमाण के भरोसे वस्तु का निराधार करना और प्रत्येक अज्ञेय तत्व का अविश्वास करना, बस यही तो तुम लोगों ने सीखा है।

श्वेताम्बर—नितान्त भ्रम पूर्ण बात कह रहे हो श्रमण। ना समझी के कारण ब्राह्मण जो आक्षेप हमारे ऊपर करते हैं उसी को उधार लेकर तुमने हमारे ऊपर थोपा है। नहीं तो वह कुमारी सुनन्दा, क्यों कारागार में रह गई? देवता उसको क्यों यहां छोड़ गए?

श्रमण—किसी दिन देवता उसको भी त्राण देंगे। किन्तु मैं सुनता हूं वह जैन है।

श्वेताम्बर—हुं! तर्क की यही प्रणाली सीखी है क्या?

श्रमण—तुम लोग भी शैवों और कापालिकों के समर्थक हो?

श्वेताम्बर—हम इनके समर्थक! झूठ!! राजा जैनों का पीड़क है और ब्राह्मणों का पिट्ठू तथा कापालिकों का संगी। हम उनके समर्थक! परन्तु, मैं भूलता हूँ, तुम लोग शक पुलिन्दों से भैयाचारा स्थापित किए हो, और हम लोग मालव पहले हैं और अन्य कुछ पीछे, इसलिए चाहे कुछ कहलो। कापालिकों के समर्थक!!

(नेपथ्य में—'कापालिकों की निंदा कौन कर रहा है?' कुछ कापालिकों का प्रवेश। इस समय वे लोग गले में मुंड माला नहीं डाले हैं। डंडे लिए हुए हैं।)

एक कापालिक—(डंडा तानकर) कापालिकों की निन्दा कौन कर रहा था? बोलो। तालू के निकट जीभ की जड़ है, और तालू खोपड़े के

नीचे के स्थान का नाम है। खोपड़ा घुटा हो चाहे कपड़े से ढका हो, डण्डे के सम्पर्क में आते ही जीभ को आदेश देता है—भीतर बनी रहो; भीतर बनी रहो।

श्रमण—देखो जी बहुत आंखें मत दिखलाओ हम मारना नहीं जानते तो मरना अवश्य जानते हैं। यह है हमारा सिर, मारो।

श्वेताम्बर— हम मारने की इच्छा नहीं करते परन्तु हमारे मित्र मारना जानते हैं, और इच्छा की धारा भी किसी विशेष परस्थिति में उत्पन्न हो सकती है।

कापालिक—हमारा राजा ढुलमुल है, नहीं तो तुम लोगों को कभी का सिन्धुसौवीर की ओर धकिया दिया जाता।

श्वेताम्बर—और तुम यहां विराम विश्राम के साथ अपना डण्डा घुमाते रहते! जाओ कापालिक, तुम भी हाट में बैठकर हमारी मनमानी आलोचना करलो। मालवों की यह स्वतन्त्रता सबको एक समान प्राप्त है।

श्रमण—तुम्हें यदि अपने डंडे और कुठार से ही वार्ता करनी है तो उत्तर-पूर्व और उत्तर-दक्षिण तथा पश्चिम में उत्तमभद्रों के पास चले जाओ या पश्चिम-उत्तर में सिन्धुसौवीर। आटा दाल के भाव का पता लग जायगा।

एक कापालिक—हां! ये हैं तुम्हारे सगे सम्बन्धी!! हमारे त्रिशूल की भाल, कुठार की धार, बाण की नोक और मत्त मयूर की चंचु तुम्हारे इन मित्रों को भूतकाल में मिला देने के लिए चञ्चल हो रही हैं।

(कापालिक की आखों से क्रोध टपकने लगता है। दांत पीसता है और ठोक पीट करने की सुविधा की खोज में देखता है कि इधर उधर कहीं कोई सैनिक या चाट तो नहीं है। श्रमण और श्वेताम्बर बच कर निकल जाना चाहते हैं कापालिक पैंतरे बदलते हैं नेपथ्य में गायन।)

❀ गीत ❀

(तिलक कामोद)

सब जन मिल हरि नाम पुकारो
तन मन प्रतिपल हरि पर वारो
माया पर से चित्त विरत कर
जीवन की प्रतिपत्ति संवारो

[एक भक्त वैष्णव का नेपथ्य से गाते हुए प्रवेश। वैष्णव नील परिधान धारण किए है। शरीर पर चंदन की छापें हैं। माथे पर रोरी का सींकिया तिलक अंकित है। आवार पीले रंगका ओढ़े है। लम्बे केशों में तैल है, संवारे हुए है। बालों पर श्वेत और लाल फूलों की माला है। भुजापर केयूर, हाथ में वलय, गले में स्वर्ण का हार और उँगलियों में मुद्राएं पहिने है। इसको देख कर कापालिकों का ध्यान बट जाता है। वे वैष्णव को मुँह बिराते हैं। वैष्णव के आने पर श्रमण और श्वेताम्बर चले जानेका प्रयत्न करते हैं। कापालिक बीच में पड़कर रोकना चाहते हैं। वैष्णव उनके पास जाता है।]

वैष्णव—इन लोगों को क्यों छेड़ते हो आप ? जो समय इस छेड़छाड़ में और नाना प्रकार के रौरे मचाने में नष्ट करते हो उसका सदुपयोग भगवद्भक्ति में ही हो सकता है। भगवान को अपना स्वामी, पति, सर्वस्व समझ कर अपने को उनके चरणों में डाल दो। नारायण नारायण।

कापालिक—भगवान पति ! सो कैसे वैष्णव ? हम तो स्त्रियां नहीं हैं। (**बौद्ध और जैन हट जाते हैं**) अरे ओ घुटमुंडो, ओ बचूवर्ग, कहां जा रहे हो ! हम तुमको चबाए नहीं जाते। थोड़ा ठहरो, डण्डा

खोपड़ी का प्रणय शेष है। ठहरो, सुने जाओ। यह स्त्री हृदय वाला पुरुष क्या कहता है।

(वे लोग ठमक जाते हैं।)

वैष्णव—कापालिक सज्जन, भगवान का नाम किसी बहाने भी लो, लो तो। जब विपद आती है तब भगवान के सिवाय और कोई आश्रय नहीं रहता। उस समय आंख के आंसू अपने दर्पण में उनको देखना चाहते हैं और वे नहीं दिखलाई पड़ते। इन दीन जनों को मत सताओ।

श्वेताम्बर—हम दीन जन नहीं हैं। श्रमण कदाचित् हों।

कापालिक—(हँसकर) वैष्णव, भगवान के सामने ओढ़नी ओढ़ कर किस प्रकार नाचते हो, कुछ यहां चौक में भी प्रदर्शन करो। इन लोगों को भी ओढ़नी ओढ़ना सिखलाओ।

(श्रवणों और श्वेताम्बरों का प्रस्थान।)

वैष्णव—कापालिक सज्जन, मरने के उपरान्त शरीर की भस्मि मात्र रह जायगी। उसको भी वायु कहीं ऐसा उड़ा ले जायगी कि एक कण का भी पता न चलेगा। फिर केवल वही ओढ़नी रह जायगी जिसको ओढ़ कर भगवान के सामने कांपे थे। वही ओढ़नी जीवन की रखवाली की समर्थता रखती है और वही मरने के पश्चात् उस लोक की।

(वैष्णव की आंखें आनन्द में झूम जाती हैं और वह सखी भाव में थोड़ा सा नाचकर, बांसुरी बजाने की भाव भंगी में खड़ा रह जाता है।)

कापालिक—यदि ऐसे में कोई आपको दो चांटे कनपटी पर जड़ दे तो कौन सा स्वर और ताल बनेगा बहूजी?

(चौक से आने जाने वाले चले जाते हैं। दो रह जाते हैं)

एक—(दूसरे से) अरे चलो भी, क्या देखते हो, यह तो यहां नित्य ही होता रहता है।

दूसरा—हां कुछ है नहीं, कुछ धौल धप होती तो ठहर भी जाते। चलो। (वे जाते हैं।)

दूसरा कापालिक—अजी पैर में घुँघरू और पहिन लेते!

एक कापालिक—और आंखों में काजल लगा लेते!

एक और कापालिक—हाथों में चूड़ियां, दांतों में मिस्सी और मूँछ सपाट।

एक कापालिक—छाती पर कंचुकी।

दूसरा कापालिक—कानों में बालियां और झूमके, नाक में नथ और बेसर—पूरा शृंगार करो वैष्णव जी।

वैष्णव—कितना भी ठट्ठा करो, भगवान रीझते हैं भक्तों पर ही।

कापालिक—रे भक्ति पर! रे नपुंसक!!

वैष्णव—भगवान के सामने सब नपुंसक हैं, वाचाल कापालिक।

कापालिक—हमारे भगवान शंकर तो वीर्य और तेज के ब्रह्माण्ड हैं और हमलोगों को वे इसी का वरदान दिया करते हैं। तुम्हारे विष्णु क्या हैं! उँह।

वैष्णव—भगवान शंकर डमरू बजाते बजाते विष्णु भगवान के सामने नाचते नाचते नहीं अघाते। परन्तु तुम तो मूर्ख हो। तुमको तो शंकर भगवान भी नहीं समझा सकते।

सब कापालिक—ऐं! मारो इस नारीमुख को!! मारो इस हिजड़े को!!!

(वैष्णव भागता है। उसके पीछे पीछे कापालिक जाते हैं। दो नागरिकों का दूसरी ओर से प्रवेश।)

पहला—नगर में इतना दुन्द होता रहता है कि कुछ ठिकाना नहीं।

दूसरा—चोर उचक्कों का कोई उपद्रव नहीं, परन्तु धर्म के धूमकेतुओं के मारे यह धरा थराथरा जाती है। इनका नियंत्रण नहीं हो पाता।

पहला—हो कैसे? धर्म के ऊपर विचार और आचरण करने की इतनी स्वतन्त्रता बढ़ गई है कि नर-बलि से लेकर पुरुष का स्त्री बनना तक सहज ही होता रहता है, और, बड़े बड़े वाद-विवाद-परिषदों से लेकर गलियों और जनमार्गों पर तक, खुल्लमखुल्ला मुण्डभंजन, आए दिन की घटनाएँ हैं। सब धर्म के नाम पर।

दूसरा—राजा नहीं कुछ कर सकता है?

पहला—अरे जब हमारी समिति और ये इतने प्रमुख, अभिजात, कुछ नहीं कर सकते तो राजा को अधिकार ही क्या? और फिर इन कापालिकों का पक्षपात समिति में इतना बढ़ गया है कि न्याय की गति ही रुद्ध हो गई है। उन तीन जैन सन्यासियों को पकड़ कर ये कापालिक मार डालना चाहते थे। राजा ठीक अवसर पर पहुंच गया, बचा ले आया। तो भी उन लोगों को वन्दीगृह में डाल दिया। उन्होंने क्या अपराध किया था?

दूसरा—दो तो उनमें से निकल ही भागे।

पहला—निकल भागने की बात पीछे। मैं पूछता हूँ उनका अपराध क्या था?

दूसरा—वे उस दिन मेले में बहुत अनुचित बक रहे थे।

पहला—इसलिए उनको मार डालना चाहिए था?

दूसरा—वे उत्तमभद्र थे। उन्होंने कापालिकों का और यज्ञ करने वाले ब्राह्मण का बहुत अपमान किया था—और फिर अपने यहां कापालिकों को केवल दिन में नर-बलि करने का निषेध है।

पहला—यही तो अव्यवस्था का कारण है। चांडालों और अन्त्यजों के बालक भी इस बलिदान के मिस कापालिक मार डालते हैं। यह क्या

धर्म है ? मेरा बस चले तो सब कापालिकों को बंदीगृह में बन्द कर दूँ और कहदू कि अब करो एक दूसरे का बलिदान। परन्तु ये लोग युद्धों में काम आते हैं इसलिए इनके अधर्म का दमन नहीं कर पाते।

दूसरा—बर्बर बनवासी भी तो इस प्रकार के बलिदान करते हैं। उनको भी तो नहीं रोका जाता।

पहला—उन्हीं से कापालिकों ने नर-बलि की प्रथा सीखी होगी। परन्तु वे क्षम्य हैं क्योंकि अनजान हैं। ये अक्षम्य हैं क्योंकि समग्र दर्शन शास्त्र के ठेकेदार होते हुए भी ये इतने कुकर्म करते हैं !

दूसरा—वे जो दो निकल भागे, जानते हो उसमें राजा की आंख मिचौनी थी ? वे दोनों उस रात और एक दिन एक जैन के घर ठहरे रहे, फिर चुपचाप किसी अंधेरे में सरक गए।

पहला—राजा ने क्यों निकल जाने दिया ?

दूसरा—क्योंकि उसके मन में निष्ठुरता कम है।

पहला—उसने बहुत अच्छा किया।

दूसरा—अभिजातों मे कुछ सुग-सुग चल रही है कि राजा को दं दें या न दें।

पहला—जनता को बुरा नहीं लगा प्रमुख और अभिजात कुड़ मुड़ाकर रह जायँगे।

दूसरा—वे दोनों निकल भागे हैं परन्तु अपना एक बड़ा अङ्ग तो पीछे छोड़ गए हैं—राजकुमारी सुनन्दा को। उसका विवाह अपने राजन्य के साथ होगा।

पहला—तब धारा के उत्तमभद्रों से मालवगण के प्रति वैर-भाव की मात्रा में कमी आजायगी, इसीलिए कदाचित् गर्दभिल्ल ने उन दोनों मुनियों के निकल भागने में आंख-मिचौनी की होगी।

(दोनों का बातें करते हुए प्रस्थान)

सातवां दृश्य

[स्थान—जङ्गलों पहाड़ों का मार्ग। समय दिन। आगे आगे कालकाचार्य और पीछे पीछे वकुल का प्रवेश। कालकाचार्य चिन्तामग्न है।]

वकुल—आचार्य, आप अपने पूर्व निश्चय पर आजाइये। आप यदि भ्रम में पड़ जायंगे तो इस भूमि की कुशल नहीं।

कालकाचार्य—(किसी विचार में से उभरता हुआ सा) वकुल, अभी लौट पड़ने के लिए समय है, अवसर है। जिन शकों को सहायता के लिए आमन्त्रित किया है वे आकर फिर यहां रुप जायंगे, यहां की जनता का शासन करेंगे। देश परतन्त्र हो जायगा।

वकुल—गुरुदेव, जनता, भूमि और देश क्या हैं? यदि जनपदों का आचार विचार नष्ट और भ्रष्ट है तो जनता, भूमि और देश केवल भौगोलिक संज्ञाएं ही तो हैं। सोचिए कितने अधर्म और कितनी अनीति का प्रसार नहीं है। आपके उपदेश और शास्त्रार्थ का कापालिकों पर क्या प्रभाव पड़ा?

कालकाचार्य—(उखड़ता हुआ सा) हां, कापालिक! ओह कापालिक!! उनकी अपेक्षा विषधर भुजङ्ग अच्छे!!!

वकुल—अधिकांश मालव और यौधेय शैव हैं, कापालिकों के मौसेरे भाई!

कालकाचार्य—कुछ जैन और बौद्ध भी हैं इन दोनों जनपदों में।

वकुल—थोड़े समय उपरान्त सब मिट जायंगे। कापालिक उनकी भी मुण्डमाल पहिनेंगे।

कालकाचार्य—(क्षुब्ध स्वर में) असंभव। ऐसा नहीं हो सकेगा।

वकुल—हो नहीं सकेगा ! स्पष्ट हो रहा है गुरुदेव। कापालिकों ने अहिंसावादियों को रौरव नरक की यातनाएं दे रखी हैं। उनको अधिकार पदों से उतार दिया गया है। वे अपने धर्म का अनुसरण नहीं कर सकते—

कालकाचार्य—(अधीर होकर) यह सच है, यह सच है, वत्स। परन्तु शकों को जब मैं उज्जैन पर चढ़ा ले आऊंगा, तब मेरा देश परतन्त्र हो जायगा, मैं देशद्रोही कहलाऊंगा। वकुल लौट चलो।

(लौटने को होता है)

वकुल—गुरुदेव, अत्याचारी गर्दभिल्ल उज्जैन में बहिन सुनन्दा को सताता रहे ! कापालिक और ब्राह्मण यज्ञों में नरों और पशुओं को काट कर डालते रहें !! और आप इतने आगे गए हुए पदों के लौटाने की बात करें !!!

कालकाचार्य—(सिर पर दोनों हाथ रख कर) ओह !!!

वकुल—किसी भी निस्सार भ्रम के मोह में मत पड़िए। दूसरे लोक के देवों ने मालवों और यौधेयों को दण्ड देने के लिए शकों को उत्पन्न किया है और आपको उनके निमन्त्रण का निमित्त बनाया है। नदी की चली हुई धार का प्रवाह, छोड़े हुए बाण का वेग, निकला हुआ शब्द, और भस्म किया हुआ शरीर फिर लौट कर नहीं आता। उसी प्रकार आपका इतना बढ़ा हुआ पग, शकों को दिया हुआ निमन्त्रण और उनका इस देश में प्रवेश अब कैसे अवरुद्ध होगा ?

कालकाचार्य—(अधीर होकर) वकुल ! वकुल !!

वकुल—आचार्य, गुरुकुल में आपकी वाणी का जो प्रसाद मैंने पाया था उसी का तो उपयोग कर रहा हूँ; वैसे मुझमें बुद्धि ही कितनी है ? सोचिए आपके इस अनिश्चय का बहिन सुनन्दा के भविष्य पर कितना बुरा प्रभाव न पड़ेगा।

कालकाचार्य—हूं—(**सोचता है**) शक नायक मेरे विषय में सोचेंगे मैं नितान्त हीन मनुष्य हूँ, बिलकुल अविश्वसनीय। और—

वकुल—और, गुरुदेव, लाखों करोड़ों शक और हूण, ऋषिक और हिङ्गुण, जैन और बौद्ध बनने को तैयार बैठे हैं; अब तो, निर्भ्रम होकर अग्रसर होइए और उनका सञ्चालन करिए।

कालकाचार्य—हां—हुं—ठीक कहते हो वत्स। मैं कुछ समय के लिए विमन क्यों हो गया था? आश्चर्य है! वकुल !!! बढ़ो !!! कापालिकों और गर्दभिल्ल को दण्ड देना ही पड़ेगा।

(**यवनिका**)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

(स्थान—शमीपुर, सिंध के उत्तरी भाग में झेलम (वितस्ता) नदी जहां सिंधु से मिली है, उस संगम से दूर। नीचे। समय दिन, दोपहर के उपरान्त। शमीनगर के एक विशाल प्रासाद में राजसभा। महाक्षत्रप कुजुल, क्षत्रप भूमक, महाक्षत्रप नहपान, नहपान का जामाता उषवदात, और मथुरा इत्यादि के क्षत्रप तथा शक नायक। राजसभा में ईरानी तड़क भड़क है। कुजुल को छोड़ कर ये सब छहरात शक हैं। सिर के बाल या तो कटे हुए हैं या मुड़े हुए। अधिकांश चपितनासिका वाले, रंग ताम्रवर्ण, कुछ की आखें नीली या कंजी। ठोड़ी पर थोड़े से बाल, होठों के दोनों ओर मूछों की रेखाऐं मात्र, दूरसे देखने पर मूछें मालूम ही नहीं पड़तीं। घुटनों के ऊपर तक के झांगे और टखनों तक पैजामें। बिना चोंच के जूते पहिने हैं। चौड़े फन की तलवारें कमर में डाले हैं। गले में स्वर्ण और मोतियों की मालाएं और

कलाहियों पर जड़ाऊ पट्टे। पिंडलियों पर, जूतों के ऊपर, टकोरे। क्षत्रप ऊँचे मञ्च पर जड़ाऊ और गद्देदार चौकियों के ऊपर बैठे हुए हैं। अन्य सरदार नीचे की चौकियों पर। सरदारों के वस्त्र कुछ कम तड़क-भड़कदार हैं, वैसे, उनकी वेश-भूषा क्षत्रपों जैसी ही है। महाक्षत्रप कुजुल त्रिपुंड लगाए है। वह औरों की अपेक्षा कुछ अधिक ऊँची चौकी पर बैठा है। उसकी जंघा के निकट एक विशेष प्रकार का हथियार—सगर—रक्खा है। वह लोहे की गदा है। कुजुल की ठोड़ी पर बहुत ही थोड़े बाल हैं और मूछ की जगह बाल और भी बहुत कम। उसका सिर मुड़ा हुआ है। मुड़े हुए सिर पर एक लम्बा किरीट है। नाक तो सभी की चिपटी हैं, परन्तु कुजुल की बहुत चिपटी है। इसकी आंखें भी कुछ अधिक धसी हुई हैं। एक ओर ऊँचे आसनों पर कालकाचार्य और वकुल बैठे हुए हैं। ये दोनों बौद्ध श्रमण के वेश में हैं—नीचे कुर्तक, ऊपर उत्तरीय; उत्तरीय के नीचे कमर तक धोती, पीठ से कन्धों तक आई है और कन्धों से नीचे छाती पर जाकर दोनों ओर उसमें गांठ बंध गई हैं। भूमक की लड़की तन्वी आर्य वेश धारिणी है। उसकी नाक सीधी है तथा ललाट प्रशस्त। वह अति सुन्दर है। आयु लगभग बारह-तेरह वर्ष। वह भूमक के पास बैठी हुई है। द्वारपाल चौंर लिए हुए द्वारों पर खड़े हुए हैं। एक ओर बड़ा नगाड़ा रखा हुआ है। उसके पास एक क्षहरात-शक सिपाही चोट के लिए चुप-चाप खड़ा है। प्रासाद के बाहर दूरी पर क्षहरातों की बड़ी छावनी है जिसका शब्द कभी कभी सुनाई पड़ता है।

कुजुल—आज कुछ निश्चय करके ही उठिए। ये दोनों जैन महात्मा अब अधीर हो उठे हैं।

नहपान—बौद्ध हैं, बौद्ध, महाक्षत्रप ।

कालकाचार्य—नहीं हैं ।

नहपान—और वस्त्र प्रावार ?

कालाकाचार्य—उनका रङ्ग उन्हीं का जैसा है । परन्तु हमारी समस्या से मत का सम्बन्ध ही क्या है क्षत्रप ?

कुजुल—ठीक कहते हैं महात्मा जी । हमको किसी के मत से कोई प्रयोजन नहीं । मैं स्वयं शैव हूँ । सत्यानाश करने वाले शिव का प्रतिनिधि । जहां जाता हूं बिना किसी पक्षपात के सबके सिरों का एकसा कचूमर निकाल देता हूँ ।

कालकाचार्य—शैवों के साथ कोई पक्षपात किया जायगा ?

कुजुल—रंचमात्र भी नहीं । मुझको ज्ञात है शिव के गण आपस में लड़ भी जाते हैं । और शिव को यह सब देखकर बड़ा भारी विनोद प्राप्त होता है । वे रक्त की नदिया बहते और चकनाचूर किए गए खोपड़े देखकर ताडव नृत्य करने लगते हैं ।

भूमक—ऋषिक प्रवर, हम लोगों को बौद्धों पर दया रहती है । उत्तमभद्र इत्यादि बौद्ध हमारे मित्र हैं । हम उनको थोड़ासा चरका देते हैं ।

कुजुल—शककुल के तारे वीर भूमक, आपको भली भांति ज्ञात है कि हम शैव, ऋषिक शक या क्षहरात बौद्धों पर अब बिलकुल हाथ नहीं उठाते, परन्तु ये जो आर्य-बौद्ध हैं (दांत पीसकर) इनकी चटनी बना डालना तो हमारा नित्य नियम है ।

कालकाचार्य—मालव जनपदों में बौद्ध और जैन भी हैं कुछ वैष्णव भी । शैव अधिक हैं ।

उपवदात—यह वैष्णव कौनसी नवीन निष्पत्ति है ?

वकुल—मैं बतलाता हूँ। आर्यों ने हमारे देश से अपोलो और जुपिटर की कल्पना को चुराकर जो खिचड़ी पकाई है, विष्णु उसीका परिणाम है। उसके हाथ चार करदिए गए हैं। और वैष्णव—

कालकाचार्य—चुप, चुप। जाने न समझे। वैसे ही चबड़ चबड़ करता है। अपोलो और जुपिटर की खिचड़ी! मूर्ख कहीं का!! क्षत्रपो, विष्णु आर्यों का अति प्राचीन देवता है। सहस्त्रों लाखों वर्ष पुराना। विष्णु, जिन और बुद्ध का पुजारी है, सेवक है। उसको वैदिक आर्य नाच नाच कर और गा गाकर पूजते हैं।

मथुरा का क्षत्रप—हमने पद्मावती में यह स्वांग देखा है। परन्तु है मनोहर। हमलोग अपने राज्य में इस मत के मानने वालों को मनमानी पूजा करने देते हैं। उनका समय षडयन्त्रों की ओर नहीं जाता। पर हमारे यहां के शैव बड़े दुष्ट और कुटिल हैं। हम उनका उपचार कसके करते हैं अर्थात् जो शक या क्षहरात नहीं हैं—उनका।

कुजुल—क्षहरातों और शकों में कुछ अन्तर तो है नहीं। विवाह सम्बन्ध होते हैं। नातेदारियां हैं।

भूमक—जो आर्य अपने को शक कहने लगे हैं हम उनके साथ भी सम्बन्ध करने को प्रस्तुत हैं, क्योंकि जिस प्रकार ऋषिकों और हिक्षुणों में वर्णव्यवस्था नहीं है, उसी प्रकार हमारे यहां भी नहीं है।

वकुल—आर्य अपने को शक कहने लगे हैं! कौनसे आर्य?

भूमक—हम वैदिक आर्यों को मार डालने या दास बनाने के पहले उनको एक अवसर देते हैं—वे अपने को शक कहने लगें और बौद्ध होजायँ तो बचा दिए जाते हैं।

कालकाचार्य—मुझको ज्ञात है, और, समझता हूँ कि इन भावोन्मादी

कुजुल—हम आर्य शैवों पर कुछ कृपा करते हैं—याने दास बना लेते हैं या नाक कान काट कर छोड़ देते हैं।

बकुल—आर्य शैवों के बराबर बुरा और कोई हो ही नहीं सकता।

कुजुल—यह भी उत्तमभद्र हैं क्या कालक जी ?

कालकाचार्य—नहीं। इनका वंश यवन है।

कुजुल—सुन्दर हैं। सलोने हैं। मैंने कपिशा के राजा हिमाद्रि को जो यवन है, पराजित करके भी उसके सिक्के की एक ओर उसका चिन्ह रहने दिया है। (सोचकर) परन्तु मैं अब अपने सिक्के पर अपनी जाति की पूरी कहानी लिख दूंगा। उसकी एक ओर हमारे देश का दोकुब्बी ऊँट और दूसरी ओर बैल और त्रिशूल रहेगा।

नहपान—इसका अभिप्राय महाक्षत्रप ?

कुजुल—बैल शिव का वाहन है। हम शैव हैं। इसलिए दूसरी ओर बैल, और त्रिशूल हमारा हथियार। ऊँट हमारा वाहक और मित्र।

नहपान—मैं अपने सिक्कों पर शकों का निजत्व बनाए हुए हूँ।

कुजुल—आपका निजत्व है कहां ? आपलोग तो जहां जाते हैं वहीं के रँग में रँग जाते हैं !

भूमक—हम अपना निजत्व जैसा बनाए रखते हैं उसको यह भारतवर्ष तो क्या सारा संसार भर जानता है।

कुजुल—हम भी जानते हैं। हमारे ऋषिक जानते हैं और मेरु, कुश तथा ऐरावण में अवशेष आपके भाई बन्द भी जानते हैं। आप शाहानुशाही शकों, और, क्षहरात शकों के अनेक समूहों में जैसी कुछ परस्पर कलह चलती रहती है, वह भी हम जानते हैं। आपके छयानवे कुल परस्पर जैसा लतियाव करते रहते हैं वह भी हमसे छिपा नहीं है। अभिमान मत करो क्षत्रप। (झूमता है और आंखें तरेरता है।)

भूमक—और इन्हीं लातों से हम आर्यों के भारत को जैसा कुछ रौंदते रहते हैं वह भी आपसे न छिपा होगा महाक्षत्रप। अट्ठाईस हाथ लम्बे लट्ठे पर फहराने वाले आठ हाथ चौड़े और बारह हाथ लम्बे भगवे आर्य झंडे को सिन्ध और सुराष्ट्र में किसने झुकाया? मथुरा और पद्मावती में—

कालकाचार्य—(**तुरन्त खड़े होकर**) सुचित्त! शान्त!! क्षत्रपो! शक और ऋषिक वीरो!! आपतो वैदिक आर्यों के विषय में चर्चा करिए। विवाद करके परस्पर के भेदों को मत बढ़ाइए। वैदिकों को विदित होगया है कि आप किसी बड़े अभिप्राय की सिद्धि के लिए भारतवर्ष के इस छोर में एकत्र हुए हैं। मालव, यौधेय, आरक, जर्ट, इत्यादि कटिबद्ध हो उठे हैं। आन्ध्र का शातकर्णि भी चपल हो रहा होगा। और, आप लोग छोटी छोटी सी बात के लिए लड़े पड़ते हैं! शान्त वीरो!!

वकुल—विदिशा का रामचन्द्र नाग भी, जो कट्टर शैव है, मालवों का साथ देगा।

नहपान—कादम्ब मगवाओ और कर्पासिक नर्तकियों को बुलवाओ। संसार भरके विवाद और कलह सुरापात्र और उनकी छमछम में डूब जायंगे।

(**सैनिक नगाड़े पर चोट देता है। द्वारपालों का प्रवेश**)

द्वारपाल—आज्ञा हो।

नहपान—सुरा और सुरा के पात्र तथा कर्पासिक नर्तकियों को भिजवाओ। (**द्वारपाल जाते हैं।**)

कुजुल—मैं गुडापर्ण की सन्तान हूँ, जिसने अपने नाद और बाहुबल से संसार को कम्पित कर दिया था, इसलिए मुझको कभी कभी क्रोध आजाता है; परन्तु अब वह सब धुल जायगा। मैं, और मेरे ऋषिक शकों और क्षहरातों के मित्र हैं।

उषवदात—वे दोनों एक ही हैं, महाक्षत्रप।

तन्वी—पिताजी, इन्होंने किसी नाग का नाम लिया था। क्या इस देश में सांप भी राज करते हैं?

भूमक—बेटी वह सांप नहीं है। मनुष्य है।

वकुल—परन्तु वह सांपों की पूजा करता है।

कालकाचार्य—सांपों को बचाने के लिए भगवान ने एक जन्म में अपने शरीर का त्याग किया था, तब से आर्य लोग सांपों की पूजा करने लगे हैं।

उषवदात—परन्तु यह पूजा तो अनार्यों में और अन्य देशों में भी होती सुनी गई है।

नहपान—विदिशा का रामचन्द्र शैव भी है, और सर्प-पूजक भी है?

तन्वी—तो वह नाग क्यों कहलाता है?

नहपान—इसी कारण तो, बेटी।

तन्वी—विदिशा कहां है?

भूमक—हम लोग उस ओर भी जायगे। तुमको सब देश और नगर दिखलाएंगे। रेंगने वाले नागों को लकड़ो से मारा जाता है, राज्य करने वाले नागों को खड्ग से काटेंगे।

कुजुल—मै अपने सगर से इन नागों का सिर भुर्ता करूंगा, देखना बेटी।

नहपान—आपकी बात से स्मरण हो आया कि रसपान और नाच गान के उपरान्त आगे की योजना पर विचार करना है।

(सेवक मद्य, सुरापात्र, इत्यादि लाते हैं। उनके पीछे पीछे नर्तकियों का प्रवेश। सुरापान आरम्भ होता है और नर्तकियां गाती नाचतो हैं। नर्तकियों का रङ्ग उजले तांबे के रङ्ग का है

और वे चटकदार वस्त्रालङ्कार पहिने हैं। हाथों में गुदने गुदवाए हुए हैं। सब तरुण अवस्था में हैं। वाद्य तार तन्तु के। ताल के लिए मृदङ्ग। नर्तकियों का गायन—)

❀ गीत ❀

(राग भीमपलासी में)

कलशों में जो बची हुई है उसको तुमने क्यों छोड़ा ?
मौज मनाते जीभ थकी क्यों, आँखों ने क्यों पथ मोड़ा ?
असि की धारा से खरतर है आजों का वह जो अभिमान;
स्वर्ग नरक की संधि सलोनी, जीवन की वह मीठी तान,
हुआ नहीं, जो होने वाला, उससे नाता क्यों तोड़ा ?
कलशों में जो बची हुई है उसको तुमने क्यों छोड़ा ?

(गायन की समाप्ति पर नर्तकियां चली जाती हैं।)

तन्वी—मैं नाचना गाना सीखूंगी।

भूमक—सिखला देंगे।

तन्वी—मैं शीघ्र सीखना चाहती हूँ। हु, शीघ्र।

भूमक—हां, हां, शीघ्र।

तन्वी—और मै गुदने भी गुदवाऊंगी।

भूमक—इतने बहुत ! तुम्हारा गोरा हाथ भद्दा दिखलाई पड़ने लगेगा।

तन्वी—मैं तो गुदवाऊंगी।

भूमक—अच्छा हाथ पर तुम्हारा और अपना नाम गुदवा दूंगा। बस ?

तन्वी—(प्रसन्न होकर) हां, हां पिताजी, बहुत ठीक।

कालकाचार्य— उज्जैन का राजा गर्दभिल्ल बड़ा पापी और दुष्ट है। जनपद उसके मारे घबरा उठा है। कापालिकों को आश्रय देता है। कापालिक मनुष्यों का बलिदान करते हैं।

वकुल—भूमि बहुत उपजाऊ, हरी भरी और सोने चांदी से पुरी हुई है। यज्ञों की ओट में ब्राह्मण बहुत लूटते खाते हैं।

(सुरापान बढ़ता है।)

भूमक—मैंने भी सुना है। विचित्र देश है। विलक्षण रीतियां हैं। हाथ धोने के पहले पैर धोते हैं! पैजामें के बंध की गांठ पीछे, नितम्बों के ऊपर लगाते हैं। ह! ह! ह! कसे हुए जूते पहिनते हैं जिनके पीछे की लम्बी पुच्छी पिंडली के नीचे लौट जाती है! कटार को दाहिनी ओर बांधते हैं मूर्ख !! प्रत्येक बात में स्त्रियों की सम्मति पहले लेते हैं !!! हाथ मिलाते हैं गदेली की पीठ से! ह! ह! ह! बाईं ओर से दाहिनी ओर लिखते हैं! पुस्तक का नाम अन्त में देते हैं !! इनके यहां बुनकर अशुद्ध! खटीक और शौंडिक शुद्ध !! मूर्ख हैं !!! मूर्ख हैं !!!! शौंडिक, और सुरा वितरित करो।

(शौंडिक सुरा बांटता है।)

उषवदात—परन्तु इनके ब्राह्मण बहुत चालाक, चतुर, विद्वान और प्रभावशाली हैं। जनता उनको बहुत मानती है।

कालकाचार्य—वे लोग बड़े पाखंडी हैं। धूर्त और भ्रमों का जाल फैलाने वाले।

उषवदात—हां, हां, सो तो है ही। कुछ दे दिवा कर उन लोगों को हाथ में लेलेंगे। वे संस्कृत बोलते हैं। उनके संस्कृत मंत्रों में जादू होता है।

तन्वी—मैं गुदना संसकिरत में गुदवाऊँगी।

भूमक—अपनी बोली आत्शीकान्त है और लिपि खरोष्ठी। उसी में गुदना लिखा जायगा।

तन्वी—नहीं मैं तो संसकिरत में गुदवाऊँगी। लोग समझेंगे मैं जादूगर हूँ।

भूमक—अच्छा, अच्छा अब बात करने दो।

कुजल—बेटी तुम जाओ यहा से। खेलो कूदो। नाचना गाना सीखो।

तन्वी—हूं, मुझको यहीं अच्छा लगता है।

भूमक—मेरे कोई भाई नहीं है जो उत्तराधिकारी होता। पुत्र भी नहीं है। इसी को भाई और पुत्र समझता हूं। शौंडिक, सुरापात्र हटा लेजाओ।

(शौंडिक सुरा पात्र उठा ले जाता है।)

कुजुल—आचार्य जी, कितने उत्तमभद्र हमारा साथ देने के लिए रणक्षेत्र में आयंगे?

कालकाचार्य—एक लाख की आशा करता हू। एक तिहाई के लगभग भद्रावती से, शेष सुराष्ट्र के उत्तर—पुष्कर—से।

घटाक—कितने हाथी?

कालकाचार्य—दो सौ।

नहपान—हमलोगों को हाथियों की आवश्यकता नहीं है। कपिशा, कम्बोज, वाल्हीक और सौवीर के घोड़ों का सामना हाथी नहीं कर सकते। कुछ रथ हैं?

कालकाचार्य—हां, दो सहस्त्र।

कुजुल—चिन्ता नहीं है।

उषवदात—हमारी और महाक्षत्रप कुजुल की सम्मिलित सेना लगभग दस लक्ष होगी। मालवगण कितनी सेना हमारा विरोध करने के लिए लायंगे ?

कालकाचार्य—दस लाख से ऊपर ला सकते हैं। यौधेय मालवों का साथ देंगे।

कुजुल—क्षत्रपो, मेरी सम्मति है कि चारों दिशाओं से धावा करो। मैं अकेला दस लाख के भिन्न भिन्न यूथ लेकर मुल्तान के उत्तर से चढ़ाई करूंगा। क्षत्रप नहपान और उषवदात और भूमक दक्षिण पूर्व से—सुराष्ट्र, लाट और परान्त को दाबते हुए। मालवों द्वारा पुष्कर में जो उत्तमभद्र घिर गए हैं हम उनको त्राण देंगे। फिर क्षत्रप घटाक मथुरा और पद्मावती से और उत्तमभद्र लोग नलपुर के नीचे से विन्ध्यखण्ड के जनपदों और विदिशा के नागों को चुनौती देते हुए।

तन्वी—सांपों से लड़ाई होगी क्या पिताजी ?

भूमक—नहीं बेटी, अभी बतलाया था न ? मनुष्य होते हुए भी वे मूर्ख अपने को नाग कहते हैं।

तन्वी—हां, हां, मैं भूल गई थी। तो गुदना गुदवा दीजिए संसकिरित में। उसके जादू से जीत होजायगी।

भूमक—अच्छा, अच्छा, थोड़ा ठहर।

नहपान—मुझको यह सम्मति रुचती है।

उषवदात—ठीक है।

भूमक—स्वीकार है।

घटाक—मुझको भी।

कालकाचार्य—उत्तमभद्रों को भी इसमें सुविधा होगी। मैं जाकर उनको सचेत करता हूं। वर्षा ऋतु के पहले उत्तमभद्र नलपुर के बड़े

भारी गढ़ को अपने अधिकार में कर लेंगे। कालन्जर एक दूसरा बड़ा भारी गढ़ है। उत्तमभद्र उसको भी लेलेंगे। और—

कुजुल—देखिए आचार्यजी, आप बड़े महात्मा हैं सही, परन्तु युद्ध के मर्म को नहीं जानते। याती उत्तमभद्र नलपुर पर ध्यान को स्थिर करें या कालन्जर पर। यदि उत्तमभद्र कालन्जर पर आक्रमण करें तो मथुरा-के क्षत्रप नलपुर पर झपट लगा देंगे।

कालकाचार्य—सन्यास लेने के पूर्व मैंने सैन्य सन्चालन किया है, परन्तु जाने दीजिए। आप जैसा कहते हैं वैसा ही होगा। पूर्वीय उत्तम-भद्रों का ध्येय नलपुर रहेगा।

मथुरा का क्षत्रप—और हमारा महेन्द्रगिरि। वहां से हम कालन्जर पर आक्रमण करेंगे।

वकुल—वेत्रवती के उस पार कालन्जर के मार्ग पर हमारी जाति की एक शाखा यामुन नाम की रहती है। उसी के नाम से एक बड़ा गांव यामुनी है। यामुन लोग आपकी बहुत सहायता करेंगे।

मथुरा का क्षत्रप—(मुस्कराकर) हम उसको बढ़ाकर नगर बना देंगे और यामुन शकराष्ट्र उसका नाम रखदेंगे।

उषवदात—मालवों का नेता कौन होगा आचार्य कुछ बतला सकते हैं आप ?

कालकाचार्य—वही होगा दुष्ट दुराचारी गर्दभिल्ल।

कुजुल—और कोई ?

कालकाचार्य—एक इन्द्रसेन नलपुर जनपद में है।

कुजुल—यह कौन है ?

कालकाचार्य—वैदिक आर्य है।

नहपान—शैव ?

कालकाचार्य—शैव नहीं है, वैष्णव है। एक वर्ग उठ खड़ा हुआ है जो अपने को वैष्णव कहता है। वैष्णवों की कुछ चर्चा अभी हुई थी।

कुजुल—वैष्णव! वैष्णव!! शैव भी नहीं!!! मुल्तान की ओर लड़ने आवे तो मैं भी देखूँ उसको।

कालकाचार्य—कह नहीं सकता। परन्तु वह जनपदों को बहुत उत्तेजित करता फिरता है। भिन्न भिन्न गणों के संघ बनाने का प्रयास कर रहा है।

तन्वी—मैं नाचना गाना सीखूंगी।

भूमक—ठहर, ठहर। वह क्या कहता फिरता है?

वकुल—शकों, त्हरातों और ऋपिकों तथा हिंगुणों की बहुत निन्दा करता है। आप लोगों को नारी-मुख कहता है, हिजड़ा बतलाता है। बौद्धों के विरुद्ध विष के बीज बोता फिर रहा है। उत्तमभद्रों के तो पीछे ही पड़ गया है।

भूमक—नारीमुख कहता है! हुं!

कालकाचार्य—हां कहता तो है।

कुजुल—हिजड़ा बतलाता है! हूँ—ऊं।

(गुर्ज को संभालता है।)

नहपान—कार्य-प्रणाली स्थिर होगई, अब कार्य का आरम्भ हो।

(सब खड़े होजाते हैं।)

सब के सब—हो, कार्य का आरम्भ हो!

कुजुल—मालवगण का चूरमा करदो!!

नहपान—विन्ध्यखण्ड को धूल में मिलादो!!!

भूमक—आर्यावर्त का कचूमर निकाल दो!!!!

(उत्तेजित होकर सबका एक ओर से-प्रस्थान। कालकाचार्य और वकुल रुक जाते हैं। कालकाचार्य और वकुल को रुका हुआ देखकर भूमक और उषवदात लौट पड़ते हैं। भूमक के साथ तन्वी भी।)

उषवदात—आचार्य, ठिठक कैसे गए?

कालकाचार्य—आ रहा था। यहां से सीधा कहां जाना है, इस प्रसङ्ग पर वकुल से परामर्श करना था।

भूमक—मैं यह पूछने को लौट पड़ा कि अब आगे आप लोग कहां मिलेंगे?

कालकाचार्य—आपकी विजय का स्वागत करने के लिए उज्जैन में।

भूमक—इसके पहले हमको किसी दूत के द्वारा, उत्तमभद्रों के बढ़ने का और मालवों तथा उनके सहायकों की गति-विधि का समाचार मिलता रहना चाहिए।

कालकाचार्य—मिलता रहेगा। प्रबन्ध कर लूंगा। भिक्षु और श्रमण घूमते रहते हैं। उनकी यात्रा अबाध रहती है। उन्हीं के द्वारा समाचार भेजता रहूंगा। आपकी आरशीकान्त भाषा और खरोष्ठी लिपि में।

भूमक—ठीक है।

तन्वी—उज्जैन क्या है? कैसा है? कब पहुंचेंगे? क्या वह वैष्णव नाचता भी होगा?

भूमक—एक साथ इतने प्रश्न? चलो अब।

तन्वी—हूँ—ऊं।

[सबका प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

[स्थान—उज्जैन के राजभवन से दाईं ओर लगा हुआ उद्यान। राजभवन का एक भाग दिखलाई पड़ता है और उसमे लगे हुए उद्यान का एक अंश दूसरी छोर पर। राजभवन की बाईं ओर जनमार्ग। जनमार्ग से उद्यान नहीं दिखलाई पड़ता है। भवन के ऊपरी खंड में गोख और झरोखे हैं जो जनपथ पर खुलते हैं। उद्यान से भवन के ऊपरी खंड में जाने के लिए भीतर से मार्ग है। बाएं पार्श्व से जनमार्ग पर जाने आने वाले भवन के उस भाग के नीचे से निकल कर बाएँ पार्श्व की दिशा से लौट सकते हैं। समय—सन्ध्या। दिन की तपन के उपरान्त अब वायु में शीतलता आगई है।]

(सुनन्दा का प्रवेश। पीछे पीछे कुछ सखियां इठलाती हुईं।)

सुनन्दा—ये पुष्प इतने सुन्दर हैं कि इनका तोड़ना मैं अपराध समझती हूँ।

एक सखी—तो क्या इनका दूर से ही दर्शन करना है? परन्तु पराग-परिमल तो उनका फैल-फैल कर, बरबस हृदय में बैठ कर, तभी विराम लेगा जब वे तोड़ लिए जायँ।

सुनन्दा—वह उनका गुण है। तोड़ना उनके साथ अत्याचार करना है।

सखी—तब सौन्दर्य को दूर से ही प्रणाम करके सन्तुष्ट रहना चाहिए। स्मरण रक्खूंगी।

सुनन्दा—चल हट, तुझको यही सब सूझता रहता है। कितनी दूर से गरमी में चलकर तो इस उद्यान में आई हूं। इसपर भी तू व्यङ्ग छोड़ रही है।

सखी—ये चलीं हम सब। यहीं तक पहुंचाने तो आना ही था। महाराज आते ही होंगे।

(एक वृक्ष के पीछे से गर्दभिल्ल का प्रवेश।)

गर्दभिल्ल—किसने कहा महाराज? मालवगण ने मुझको अधिकार तो अनेक देदिए हैं, परन्तु अभी मैं महाराज नहीं हूँ।

(सखियां एक दूसरे को संकेत करके जाती हैं।)

सुनन्दा—इन दिनों सभा में क्या होता रहा? कितने समय उपरान्त आज दर्शन कर रही हूँ!

गर्दभिल्ल—शक अनेक दिशाओं से मालवों पर आक्रमण कर रहे हैं, सो आप जानती ही हैं। मालवों के सोलह विविध जनपदों के गणपतियों और छोटे छोटे गणपकों को जो यहां बहुत दिनों से एकत्र हैं, भली भांति उनका कर्तव्य समझा दिया है। वे लोग शीघ्र यहां से जाकर अपने अपने ग्रामों के अष्ट-कुलपतियों, कुलपतियों, ग्रामिकों और ग्राम-प्रमुखों को युद्ध के लिए सन्नद्ध करदेंगे। इन्हीं समस्याओं में बीधा रहा देवी।

सुनन्दा—वाह! यह कार्य तो हरकारों और कुटवारों द्वारा भी कराया जा सकता था महाराज?

गर्दभिल्ल—महाराज कहा आपने देवी! मैं इन दिनों के संचित क्षोभ को आपकी एक ही बात में भूल गया। इन गणपतियों और कुलपतियों के परस्पर वैमनस्य, द्वेष और विवाद करने के अभ्यास को देखकर खीझ खीझ उठता था। कभी कभी लगता था इन सबको समाप्त करदूं या अपने को समाप्त करलूं।

सुनन्दा—**(आंख तरेर कर)** फिर आपने वही बात कही! मुझको कसने के लिए एक बार बहुत रूठते हुए कहा था। आज किसको कसने के लिए आप उसी की पुनरावृत्ति कर रहे हैं?

गर्दभिल्ल—देवी, क्षमा करना। मेरे क्लांत मन को आपकी ही मुस्कान में शांति मिलती है। हम लोग कब तक खड़े रहेंगे? यहां कोई आसन ही नहीं! आप तो यहां मेरे आने के पहले से खड़ी हैं!! थक गई होगी।

सुनन्दा—नहीं तो, अधिक समय नहीं हुआ। विराजिए। यह सम्पूर्ण उद्यान ही आसन है। अथवा भ्रमण करते रहें तो कैसा?

गर्दभिल्ल—बहुत अच्छा।

(दोनों भ्रमण करने लगते हैं।)

गर्दभिल्ल—आज पुरानी बातें प्रबलता के साथ फिर स्मरण हो आईं। कुछ पुरानी होते हुए भी ऐसा प्रतीत होता है जैसे आज ही सब कुछ हो गया हो। प्राणों से भी प्यारी देवी, आपको पाकर मैं महाराज नहीं, महाराजाधिराज और सम्राट तक हो गया हूं।

सुनन्दा—आप ऐसा सदा ही कहा करते हैं। सच बात यह है कि मैं उस समय भ्रम में थी, नहीं धुन में थी। धुन तो अब भी है। कुछ वर्ष उपरान्त एक घड़ी आवेगी जब हम दोनों सन्यासियों के रूप में बाहर निकल पड़ेंगे और भगवान का संदेश दूर दूर तक फैलायेंगे।

गर्दभिल्ल—प्यारी देवी, एक प्रश्न करूँ! क्या आपके मन में उसके पूर्व कभी प्रेम की उमङ्ग जगी थी!

सुनन्दा—(संकोच के साथ मुस्कराकर) बतला तो दिया, पहले अनेक बार।

गर्दभिल्ल—तृप्ति नहीं होती। आज एक बार अवश्य सुनूँगा, चाहे कुछ हो जाय।

सुनन्दा—आप बार बार भूल जाते हैं, तो अब फिर से बतलाना व्यर्थ है।

गर्दभिल्ल—एक बार; मैं हाथ जोड़ता हूं। एक बार और।

सुनन्दा—अरे ! फिर वही !! अच्छा, सुनिए ।

(हँसकर चुप रह जाती है ।)

गर्दभिल्ल—कहो देवी, कहो ।

सुनन्दा—श्राविका होने के पूर्व एकाधबार मेरे मन में उठा था—क्या जीवन में कभी कोई ऐसा मिलेगा जो मुझको, मुझ अकेली को, हृदय से चाहे ? (सिर नीचा करके कनखियों देखती है ।) बस, और न पूछिए ।

गर्दभिल्ल—कहे जाओ देवी, अमृत का घूँट सा लग रहा है ।

सुनन्दा—और क्या मुझको कोई अपना कहकर पुकारेगा ?

गर्दभिल्ल—प्राणेश्वरी, प्राणेश्वरी, सहस्रबार, प्राणेश्वरी ।

(कन्धे से लगालेता है ।)

सुनन्दा—यह क्या ? अरे यह प्रमाद है !

गर्दभिल्ल—प्रमाद नहीं है । अमृत के समुद्र में डुबकियां लगा रहा हूँ । कमल के पराग और पाटल की कोमलता से भेंट कर रहा हूँ । अच्छा, यह बतलाओ जब इस भवन में, मैं पहले पहल एकांत में मिला था, तब क्या सोचती थीं ?

सुनन्दा—कुछ न पूछिए । उस समय मैं भयभीत थी । आत्मघात की धमकी से और भी विचलित हो गई थी, परन्तु आपकी कृपा के बोझ से दबी हुई थी ।

गर्दभिल्ल—उसके पूर्व मैंने आपके हृदय में कोई स्थान प्राप्त कर पाया था ?

सुनन्दा—यों ही थोड़ा सा । न जाने क्यों ? फिर बढ़ता ही गया ।

गर्दभिल्ल—और अब ?

सुनन्दा—मैं क्या जानूं । आप जानें ।

गर्दभिल्ल—देवी, आप मेरे प्रातःकाल की ऊषा हो। मेरे जीवन के पुष्पों की वर्षा, सुगन्धि का भी परिमल, संगीत की मधुर व्यंजना, मंदिर समीर की अनन्त मधुरता, गगन तारों के प्रकाश की आभा, मेरे प्राणों की वसन्त संजीवनी, कोकिला कूक की अक्षय सरसता, कान्ति की अखण्ड कमनीयता, मंजुल कल्पना की दिव्यता, मणिमुक्ता और इन्द्र-धनुष की शोभा, मेरे मन का विस्मय, हृदय का आश्रय, कवि की उपमा से भी चमत्कारपूर्ण—

सुनन्दा—अरे आपने तो झड़ी लगादी ! थकते ही नहीं !!

गर्दभिल्ल—(और भी उत्तेजित होकर) ओ सुमन मंजरियों के गौरव की श्री, ओ नई दूब की मुस्कान, शुभ सन्देशों की ओजस्विता, अखंड आशाओं की हरियाली, मेरी प्राणेश्वरी—

सुनन्दा—(गर्दभिल्ल के मुँह पर हाथ रखकर) बस कीजिए प्राणनाथ। मेरे हृदय के हंस, बस कीजिए। चलिए थोड़ा विश्राम कर लीजिए।

गर्दभिल्ल—(सुनन्दा का हाथ अपने एक हाथ में लेकर) मेरे मन का मयूर इसी फुलवारी में प्रमत्त हो रहा है।

सुनन्दा—(हाथ छुटाकर) मयूर ! मयूर !! उसका नाम मत लीजिए। ओह, कापालिकों का मत्त मयूर !!!

गर्दभिल्ल—(अविचलित) देवी, कापालिक ही इस युद्ध में अधिक उत्साह दिखला रहे हैं। उनकी संख्या बहुत है और वे अति प्रबल हैं।

सुनन्दा—उन्होंने उस दिन हम लोगों को जलाकर भस्म कर डाला होता। आप ठीक समय पर न आगए होते, तो हम में से एक के भी प्राण न बचते। दीन वकुल को बांधकर डाल ही दिया गया था। मेरे भाई आचार्य कालक—ओह ! उनका कुछ पता लगा ? कहां होंगे वे दोनों ! आपने कहा था कि खोज करवायेंगे।

(गर्दभिल्ल की वासना अस्त हो जाती है)

गर्दभिल्ल – क्या कहूँ देवी !

सुनन्दा—(व्यग्रता और चिन्ता के साथ) नाथ बतलाइए कहां हैं मेरे भाई ? आपको पता लग गया है। क्यों नहीं शीघ्र बतलाते आप ?

गर्दभिल्ल—(गले के अवरोध को स्वच्छ करके) देवी पता लग गया है।

सुनन्दा—(यकायक रुककर) कहां हैं वे ? कहां हैं वे ?

गर्दभिल्ल—देवी, शान्त हों आप। वे शक—पुलिन्दों को उज्जैन के ऊपर चढ़ाकर ला रहे हैं !

सुनन्दा – शक-पुलिन्दों को मेरे भाई ! आचार्य कालक !! आप कोई पहली कह रहे हैं नाथ। किसी ने झूठ अपवाद किया है।

गर्दभिल्ल—(सुस्थिर होकर) नहीं देवी, पहेली नहीं है। कठोर सत्य है। वे शक जो हमारे ऊपर आंधी की भांति बढ़ते चले आ रहे हैं, बौद्ध हैं। कदाचित् इसीलिए आचार्य कालक उनके संग हैं और इसी कारण उन सब के ऊपर दांत पीस रहे हैं।

सुनन्दा —बौद्ध तो अहिंसा भक्त होते हैं !

गर्दभिल्ल—परन्तु वे भिन्न प्रकार के बौद्ध हैं।

सुनन्दा—ओह ! अब परस्पर रक्तपात होगा ! इसको रोकिए।

गर्दभिल्ल—यदि हम नहीं लड़ते हैं तो हमारी स्वाधीनता चली जायगी। हम दास हो जायंगे।

सुनन्दा—स्वाधीनता की रक्षा तो होनी ही चाहिए, परन्तु कापालिकों को संग मत लीजिए।

गर्दभिल्ल— मैं कापालिकों से घृणा करता हूँ, परन्तु क्या करूँ परस्थिति ने विवश कर दिया है। कापालिकों को भी सन्देह है कि मैं उनका

उचित नेतृत्व नहीं कर सकूँगा। परन्तु अधिकांश मालवगण मेरी पीठ पर है, इसलिए भय नहीं।

सुनन्दा—आप कहा करते हैं कि नलपुर का इन्द्रसेन वैष्णव प्रबल है और वह आपका मित्र है। उसको संवाद भेज दीजिए न।

गर्दभिल्ल—देवी, नलपुर के ऊपर उत्तमभद्रों ने आक्रमण कर दिया है। इन्द्रसेन वहां फस गया है। यहां नहीं आ सकता।

सुनन्दा—भद्रावती के उत्तमभद्रों ने!

गर्दभिल्ल—हां देवी। उन्हीं लोगों ने नलपुर पर आक्रमण किया है! क्या किया जाय, यह युग ही ऐसा है।

सुनन्दा—युग! राजन्य, नलपुर के कच्छप नीच हैं। दस्यु हैं। उन्होंने एक बार मेरे भाई को लूटा था और उत्तमभद्रों के गांवों में आग लगाई थी। उत्तमभद्रों ने नलपुर पर आक्रमण करने में कुछ बुरा नहीं किया।

गर्दभिल्ल—मैं भी मन ही मन यही कहता हूँ, परन्तु इन्द्रसेन कच्छप नहीं है। कच्छप तो एक वन्य जाति है जो सिन्धु नदी की उपत्काओं और वन-कन्दराओं में रहती है।

सुनन्दा—और इन्द्रसेन तथा उसके जनपद का आश्रय पाकर सब दिशाओं में उत्तमभद्रों का संहार करती रहती है! छिः। राजन्य, नलपुर का पक्ष आप मत ग्रहण करिए।

गर्दभिल्ल—ये क्या, मालवों के अन्तर्गत जो बहुत से जनपद हैं वे सब, परस्पर लड़ा भिड़ा करते हैं। मुझको उज्जैन से ही अवकाश नहीं, नलपुर की सहायता कर ही नहीं सकता।

सुनन्दा—मेरे भाई और पिता दोनों युद्ध में बीध गए हैं, और, उनको यह नहीं ज्ञात है कि मैं कहां हूँ और क्या हूँ। आचार्य कालक यहां आएं तो मुझको देखकर क्या कहेंगे।

गर्दभिल्ल—कुछ नहीं कह सकते। आपके साथ मेरा विवाह हुआ है। आप मेरी रानी हैं। वे सुनकर प्रसन्न होंगे। संभव है कि इस समाचार के प्राप्त होने पर वे शकों के आक्रमण का निवारण करदें, और फिर हमलोग नलपुर की ओर ध्यान का उच्चाटन करके पूर्वीय मालवों, आरकों तथा उत्तमभद्रों के बीच में चिर सन्धि कराने में सफल होजायं।

सुनन्दा—आचार्य कहेंगे श्राविका होकर मैं विवाह के बन्धन में कैसे पड़ गई!

गर्दभिल्ल—वे सन्यासी होकर युद्ध के जंजाल में क्यों पड़ गए?

सुनन्दा—वे कापालिकों को दंड देना चाहते होंगे।

गर्दभिल्ल—और, हम अपने हृदयों की व्यथा को सुन्दर शान्ति देना चाहते थे।

सुनन्दा—अब जो हो, परन्तु मेरे वृद्ध पिता और आचार्य कालक का निरन्तर ध्यान रखिए, तबतो आपका प्रेम सच्चा अन्यथा झूठा और बनावटी।

(भवन में घन्टा बजता है और डंके पर चोट पर चोट पड़ती है। भवन के बाहर लगी हुई सड़क पर कोलाहल होता है।)

गर्दभिल्ल—(क्षुब्ध होकर) कंठ तक प्राण आगया है इन झंझटों के कारण। सोचा था देवी के प्रेम की मधुर मदिरा पीकर विश्रान्ति पाऊँगा, परन्तु जीवन मानों कांटों से पूर दिया गया है। देवी, मैं जाता हूं, देखूं इतनी देर में कौनसी नई बात हो गई। फिर दर्शन करूँगा।

(गर्दभिल्ल भीतरी मार्ग से भवन के ऊपरी खंड की गोख पर जा पहुँचता है और सुनन्दा उद्यान में के एक अदृष्ट भाग में चली जाती है। जाते समय वे एक दूसरे की ओर नहीं देखते। मार्ग

में कापालिक, बौद्ध, जैन, इत्यादि जनता की सम्मिलित भीड़ कोलाहल कर रही है।)

गर्दभिल्ल—क्या है, नागरो ?

एक कापालिक—अभी अभी समाचार आया है कि शक लोग हमारे जनपद में घुस आए हैं। मालव जनपदो के गणपति और गणपक अभी अपने डेरों में वाद विवाद ही कर रहे हैं। इनको यहां से शीघ्र निकालिए। हमलोग अपने मत्त मयूर को उड़ाते हुए अभी इन दुष्टों पर पिले पड़ते हैं।

दूसरा नागरिक—वे लोग गांव के गांव जलाते हुए चले आरहे हैं। स्त्री, बालक, गो ब्राह्मण सबका विध्वन्स करते हुए बढ़ रहे हैं। वैदिक मन्दिरों को तोड़ तोड़कर धूल में मिलाते चले आरहे हैं।

एक कापालिक—बौद्ध मन्दिरों, मठों और विहारों को बचाते चले आरहे हैं !

एक बौद्ध—वे विदेशी हैं। अवर्ण हैं। किसी को नहीं छोड़ते।

एक नागरिक—झूठ, नितान्त झूठ। बौद्धों को बचाते आते हैं। मुझको पता है।

गर्दभिल्ल—शान्त नागरो, शान्त।

दूसरा नागरिक—सेना को चलाइए। तब शान्ति होगी। हमलोग युद्ध के लिए सन्नद्ध हैं।

एक नागरिक—सुराष्ट्र लाट और परान्त से भाग भागकर कुछ लोग आरहे हैं। वे लोग और भी बड़ी बड़ी भयंकर बातें कहते हैं। शकों के अत्याचारों से मेदिनी कांप उठी है।

गर्दभिल्ल—व्यथित न हो सज्जनो। अभी सब प्रबन्ध होता है। मैं मालवों की सेना को लेकर शीघ्र आगे जाता हूँ तथा जनपदों के गणपतियों

को यहाँ से विदा करता हूँ। आपलोग शान्ति पूर्वक अपना अपना काम देखें।

(गर्दभिल्ल चला जाता है। जनता की भीड़ भी बिखर कर, जाती है। दो कापालिक जाते जाते धीरे धीरे परस्पर वार्तालाप करते हैं।)

एक—इस राजा ने जब से उस कुमारी के साथ विवाह किया तबसे तो यह राजा रखने योग्य ही नहीं रहा।

दूसरा—इस समय कुछ नहीं किया जा सकता। युद्ध—काल है, धैर्य से काम लेना पड़ेगा।

पहला—परन्तु है गर्दभिल्ल नितान्त निकम्मा।

(प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

[स्थान—नासिक के पास युद्ध-क्षेत्र। इधर उधर पहाड़ियां, नाले और वृक्ष समूह। समय दिन। क्षहरात शकों की लम्बी चौड़ी छावनी। भूमक, नहपान, उषवदात इत्यादि शक-नायकों के निवेश। भूमक, नहपान और उषवदात का सेनानायकों के सजीले वेश में, और कालकाचार्य तथा बकुल का श्रावक वेश में प्रवेश।]

उषवदात—मालव तो हमारी हुंकार मात्र से भाग गए! ह! ह! ह! युद्ध का योग ही नहीं आया। कापालिकों की गर्दनें कतरने के लिए हमारे सिपाहियों के हाथ सहलाते ही रह गए! सिंगा, भेरी और रम्मट का शब्द कुछ दूर से तो सुनने को मिल गया, परन्तु बजाने वाले न जानें कहां छिपे रहे और कब कपूर हो गए। त्रिशूल, खड्ग और धनुषबाणों की डींगें तो बहुत सुनी थीं, परन्तु करतब कुछ न देख पाया! मन की मन ही में रह गई!!

कालकाचार्य—कदाचित ये सब उज्जैन में एकत्र हो रहे होंगे। वहां युद्ध होगा।

उषवदात—आचार्य जी, वे अब कहीं नहीं ठहरेंगे। उत्तमभद्रों को पुष्कर में निस्तार मिल गया। वे वर्षा के कारण झंझट में फस गए थे। उनके संकट का मोचन हो गया। उस ओर से उज्जैन पर उनके चढ़ दौड़ने की सूचना पाकर अब पूरी उज्जैन नगरी के पैर उखड़ जायंगे।

भूमक—खेद है कि मैं उस अवसर पर न रह सकूँगा। सुना है कि सिन्धुसौवीर के हमारे छोटे छोटे अधीन क्षत्रपों ने द्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। इन लोगों को मालवों या यौधेयों ने भड़काया होगा। (दांत पीसकर) इन सबको पीसकर यदि मैंने चूर्ण न कर दिया तो मेरा नाम भूमक नहीं। मै गूढ़पुरुषों के समाचार की बाट जोह रहा हूँ।

कालकाचार्य—नलपुर में इन्द्रसेन वैष्णव ने उत्तमभद्रों को परास्त कर दिया है, यह बात मन को कसक रही है।

भूमक—मथुरा और पद्मावती के क्षत्रपों की मूर्खता उसका कारण है। आचार्य, हम शीघ्र प्रतिशोध करेंगे।

नहपान—देखिए तो, हम थोड़े से ही समय में इन्द्रसेन के जनपद की क्या दशा किए देते हैं। आग और तलवार से युगों तक हू हू और हाहाकार निकलते रहेंगे।

(एक शक का सैनिक वेश में प्रवेश।)

सैनिक—(प्रणाम करने के उपरान्त) स्वामी, सिन्धुसौवीर के क्षत्रपों ने अपने को स्वाधीन कर लिया है। उन्होंने अपने अपने नाम की मुद्राएँ ढाली हैं। कपिशा के यवन महाराज हिमाद्रि का अंकन एक ओर है और अपना अपना दूसरी ओर!

भूमक—(ओठ काटकर) कपिशा का हिमाद्रि! जिसका सम्पर्क मैंने अपनी मुद्रा पर से अतिकाल हुआ जब मिटा दिया था! यह साहस इन दुष्ट

दम्भियों का !! नहपान मैं आपसे विदा लूँगा। इसी समय उत्तर-पश्चिम की दिशा में कूच करूंगा।

नहपान—अभी !

भूमक—हां अभी। महाक्षत्रप। हम शक इन मालवों की भांति दीर्घ-सूत्री और शिथिल थोड़े ही हैं। आपको चिन्ता ही क्या है ? उत्तमभद्र स्वाधीन हो ही गए हैं। मथुरा और पद्मावती से शकों के समूह के समूह बढ़ते चले आवेंगे। उत्तर में पञ्चनद का केसरी रणबाँकुरा महारथी कुजुल असंख्य सेना लेकर बढ़ रहा होगा। तक्षशिला के लिअक और पतिक कुजुल के साथ इस प्रवाह पर आरूढ़ होकर चले आ रहे होंगे। जब तक ये सब मालवों को आकर घेरें, तब तक मैं सिन्धुसौवीर तथा कपिशा को और अटक पड़ी तो ऐरायण को भी विध्वंस कर लौट पड़ूँगा। सैनिक जाओ, मेरे दल को प्रस्थान करने की सूचना दो।

(सैनिक का प्रस्थान)

(तन्वी का प्रवेश। सुमन मालाएं डाले हुए है।)

तन्वी—ऐसा मनोहर देश छोड़कर आप कहां जा रहे हैं, पिताजी ? उस ओर रेतीले मैदान हैं, पेड़ कम और नंगे पहाड़ अधिक। मैं नाचना गाना यहाँ बहुत अच्छा सीख रही हूं। संस्कृत और प्राकृत का भी अध्ययन कर रही हूं। सब का अभ्यास छूट जायगा।

भूमक—(मृदुल पड़कर) यही एक समस्या है।

उषवदात—इसको मेरे पास छोड़ दीजिए। आप कहां लिए लिए फिरेंगे ?

कालकाचार्य—हम लोग इसकी देखभाल भलि भांति कर सकते हैं। मैं इसको पढ़ाने के लिए और अधिक समय दूँगा। अति प्रखर बुद्धि की है यह कन्या।

तन्वी—(हँसकर) परन्तु मैं भिक्षुणी या श्राविका नहीं बनूँगी। क्या भिक्षुणी नाच गा सकती हैं ?

कालकाचार्य—नृत्यगान तो नहीं कर सकतीं। निशिद्ध है। परन्तु उनका जीवन बहुत सुखी होता है। पर्वत शिखिर की उचाई स्वयं एक सौन्दर्य है ऊषा का पीतपट अपना निज का एक आकर्षण रखता है, तप में स्वर्ण से अधिक अपना ही चोखापन है, भिक्षुणी तथा श्राविका की त्याग द्वारा अर्जित अपनी विशालता, आत्मिक शान्ति की महानता, दुख पीड़ा और मोह पर हँसते हुए उतराते रहने की अनुभूति, नृत्य और गान के क्षणिक रस को उपेक्षा और ग्लानि की दृष्टि से देखती हैं; और—

(अनसुनी करके भूमक उषवदात को अलग ले जाता है)

भूमक—मैं तन्वी को यहीं छोड़ जाने का पहले भी निश्चय कर चुका था। बौद्ध तो यह है ही, परन्तु भिक्षुणी न बनने पावे। दूसरी बात—क्या महाक्षत्रप नहपान को मेरे संग कर सकोगे ?

उषवदात—दोनों आज्ञाओं का पालन संभव है, महाक्षत्रप। वास्तव में है भी हमारे पास आवश्यकता से अधिक सेना। ले जाइए इसके एक बड़े अंग को आप अपने साथ। महाक्षत्रप से कहलें, आइए।

(दोनों नहपान के साथ जाते हैं)

भूमक—आपको मेरी सहायता के लिए साथ चलना होगा।

नहपान—मुझको कोई आपत्ति नहीं है। यहां के जनपदों को ठिकाने लगाने के लिए अकेला उषवदात ही पर्याप्त है। क्या कहते हो कालक जी ?

कालकाचार्य—यौधेयगण अपने को सदा से अजेय समझता आया है ! उसको यहां के लोग जयमन्त्रधारी कहते हैं।

उषवदात—आगे न समझ सकेगा।

कालकाचार्य—तो ठीक है, क्षत्रप ।

तन्वी—तो मैं यहीं रहूँगी ? पिताजी आप कब तक लौटेंगे ?

भूमक—अनिश्चित है बेटी, परन्तु अविलम्ब आऊँगा । सिन्धुसौवीर के उन छोटे छोटे क्षत्रपों ने मुद्रा से मेरा नाम हटा कर हिमाद्रि का नाम अंकित करा दिया है ! हुं ! देखता हूं । मेरे राज्य को मिटाना चाहते हैं ये अभागे !! इनको ठिकाने लगाकर लौटूँगा ।

(तन्वी को गोद में लेकर उसके सिर पर हाथ फेरता है)

भूमक—(तन्वी को गोद से उतारकर) यह सुखपूर्वक रहे, बस और इसके अतिरिक्त मेरी कोई इच्छा नहीं '

(तन्वी उदास हो जाती है । भूमक नहपान को लेकर जाता है । नेपथ्य में भूमक के डंकों पर चोट पड़ती है । वह अपनी, तथा नहपान की कुछ सेना सहित प्रस्थान करता है प्रस्थान का रव क्रमशः विलीन हो जाता है।)

उषवदात—बेटी तुम उदास क्यों हो ? तुमको किसी प्रकार का भी दुःख न होने पायगा । इच्छानुसार नाचना गाना और पढ़ना ।

तन्वी—मैं कितने समय में पढ़ लिख जाऊँगी ?

कालकाचार्य—एक दो वर्ष में । मेरे अध्यापन की प्रणाली ऐसी है कि थोड़े ही समय में मेरे विद्या पीठ का मूर्ख विद्यार्थी भी पंडित होजाता था । (यकायक अपनी बहिन सुनन्दा के बाल्य-काल का स्मरण हो आता है और वह खिन्न हो जाता है—।) (धीरे से)—सुनन्दा !

तन्वी—मुझसे कहते थे कि उदास मत हो और आप स्वयं क्यों उदास हो गए ?

कालकाचार्य—यों ही बेटी । तुम्हारी ही जैसी मेरी बहिन भी थी । उसको पढ़ाया था । स्मरण हो आया ।

तन्वी—कहां हैं वे, गुरूजी, कहां हैं वे ?

(कालकाचार्य की आंख जल उठती है।)

कालकाचार्य—(बहुत धीरे) कह नहीं सकता। मालवों ने उसको बन्दी कर लिया था। ज्ञात नहीं अब कहां है। उज्जैन् चलकर खोज करूँगा।

उषवदात—अवश्य, आचार्य, अवश्य।

(उषवदात के सहायक सेनापति का प्रवेश।)

स० सेनापति—शाहु उषवदात की जय हो। समाचार आया है कि उज्जैन में शत्रुओं का एक विशाल दल एकत्र हो रहा है।

उषवदात—कोई नई बात नहीं।

स० सेनापति—मुल्तान के उत्तर में यौधेयों ने कुजुल, लिषक और पतिक की सेनाओं को रोक लिया है। पद्मावती के दल, पूर्व और दक्षिण-मालव की दिशा में कमान के आकार में बढ़ते चले आरहे हैं और उनके साथ भद्रों की भी सेना है।

उषवदात—अब हम लोगों को उज्जैन पर बिजली के वेग की भांति टूट पड़ना चाहिए। इधर के विजित प्रदेशों का प्रबन्ध तुम्हारे हाथ में रहेगा। मैं चाहता हूं कि यहां के प्रचलित आचार के अनुसार शासन प्रबंध किया जाय।

स० सेनापति—जो आज्ञा; मुझको इन प्रदेशों की थोड़ी सी जानकारी है भी।

कालकाचार्य—मैं कुछ कहूँ महाक्षत्रप ?

उषवदात—अवश्य आचार्य।

कालकाचार्य—इन प्रदेशों के जनपदों में जो प्रभावशाली गणपति हैं उनको समाप्त करिए और छोटे छोटे प्रभावहीन गणपकों और ग्राम-

प्रमुखों को अपनाइए। ये प्रभावशाली गणपति ही सम्पूर्ण विरोध की जड़ हैं, और इनमें से अधिकांश शैव हैं।

उषवदात—जनपदों के जो लोग अपने को बौद्ध कहेंगे और शक घोषित कर देंगे वे ही त्राण पा सकेंगे। गणपतियों और गणपकों का, सबका, विनाश कर दूँगा। मुझको आश्चर्य है कि यहां भूमि का स्वामी राजा नहीं है वरन् जिसके हल के नीचे हो, वह है! हमारे यहां समग्र भूमि और सम्पूर्ण देश का स्वामी शाह या क्षत्रप होता है। इस देश में भी मैं यही नियम चलाऊँगा, तब यहां की जनता की बुद्धि ठिकाने आयगी।

कालकाचार्य—जनता बिलकुल उठेगी भूमि के अपहरण से।

उषवदात—मैं किसी की भूमि छीनूँगा नहीं, परन्तु राज्य के हित के लिए छीनने की सुविधा नियम में रक्खूँगा। हमारे नियमों के विरुद्ध जो कोई भी आचरण करे उसको वध और हाथ पैर काटने, आंखें निकलवाने इत्यादि के दण्ड के साथ साथ भूमि छीने जाने का भी दण्ड दिया जायगा।

कालकाचार्य—फिर इस अपहृत भूमि का क्या होगा महाक्षत्रप ?

उषवदात—यह छीनी हुई भूमि आज्ञाकारियों को देदी जाया करेगी। प्रत्येक भूमि खण्ड के भोग का संग्रह किया जायगा जिसमें जनता को स्मरण रहे कि उसका सम्बन्ध ग्राम-मुख्यों से बहुत कम है और शाह या क्षत्रप से बहुत अधिक। ग्राम-मुख्य भूमिकर इत्यादि भोगों का संग्रह करके हमारे भोगिक को देगा और वह उसको हमारे कोष में प्रविष्ट करता रहेगा।

कालकाचार्य—शाह—

उषवदात—परन्तु मठ, विहार, संघ इत्यादि इस व्यवहार से मुक्त रहेंगे। मैं एक दान उनको अभी करता हूँ। यहीं की एक गुहा-त्रिरश्मि पर्वत की तीसरी गुहा नासिक के संघ को लगाता हूँ। कन्दरा की शिला पर लेख उत्कीर्ण किया जायगा।

तन्वी—उसके साथ अपनी विजय का लेख नहीं खुदवायंगे क्या ?

उषवदात—हां, हां, अवश्य। क्यों आचार्य ?

कालकाचार्य—आप दानी हैं। उत्कीर्ण कराइए अपनी यशवार्ता को।

तन्वो—मैं अपनी एक बांह पर गुरूजी का नाम गुदवाऊँगी।

कालकाचार्य—(प्रसन्न होकर) उससे तुमको क्या प्राप्त होगा बेटी ?

तन्वी—हर्ष मिलेगा। देखिए, कन्धे के नीचे एक ओर मैंने गुदवा लिया है शाहानुशाही महाक्षत्रप भूमक की पुत्री; दूसरी बांह पर गुदवाऊँगी आचार्य कालक की शिष्या। ह! ह! ह! ह! कितना अच्छा रहेगा। ह! ह! ह!

उषवदात—ठीक कहती है बेटी। कितनी चतुर है आचार्य यह !

कालकाचार्य—(मुस्कराकर) अत्यधिक। मुझको इसकी प्रखर बुद्धि पर विस्मय होता है। (फिर यकायक खिन्न हो जाता है। धीरे से) सुनन्दा।

तन्वी—(कालकाचार्य का हाथ पकड़कर) हां, हां,। बड़े बड़े काम करूँगी गुरूजी। मै उज्जैन चलकर आपकी बहिन का भी पता लगाऊँगी। मैं लड़ाइयां भी लड़ूँगी—जब सब हथियार चलाना सीख लूँगी सब।

(कालकाचार्य की आंख जल उठती है, एक ओर मुँह फेर कर दाँत पीस लेता है।)

उषवदात—(सहायक सेनापति से) जैसा मैंने कहा है उसके अनुसार इन प्रदेशों का शासन करना।

(सहायक सेनापति जाता है।)

कालकाचार्य—(जैसे समाधि खोली हो) बेटी, तुम युद्धविद्या और शस्त्र-संचालन अवश्य सीखना। बर्बरता के समक्ष साधुता स्त्री की रक्षा नहीं कर पाती। शक्ति अस्त्र है, शक्ति शस्त्र है और वही शिरस्त्राण

तथा ढाल है। स्त्री का वह सर्वस्व है। शक्ति जब माध्वी हो जाती है तब उसको सूर्य की प्रखर दीप्ति प्राप्त हो जाती है। उसी से अन्तराल की ज्योति जाग्रत होती है। फिर उसपर किसी भी क्रूर अन्धकार की दृष्टि स्थिर नहीं हो सकती। तुम इस क्रम का अभ्यास करना। कुछ शिक्षा निश्चित निर्धारों से प्राप्त होती है, और कुछ भ्रम के विकल्पों से भी—

तन्वी—मैं समझी नहीं।

उषवदात—यह सब मैं भी नहीं अवगत कर सका।

(**नेपथ्य में गायन-वादन होता है।**)

तन्वी—(**प्रसन्न होकर**) मैं भी गाऊँगी। सुन्दर गीत गाऊँगी। नाचूँगी भी। (**भाग जाती है।**)

उषवदात—आचार्य, कच्चे फलों को, पकाने के प्रयास में, कृमिकीट लग जाते हैं। आप तन्वी को शास्त्रों की गहनता में कच्चा न पकाकर, अभी जीवन के सरस क्रम में चलने दीजिए। हम शकों की यही परिपाटी है। आइए। आपसे कुछ बात करूँगा।

कालकाचार्य—(धीमें स्वर में) हा—आं—अच्छा।

(दोनों जाते हैं)

चौथा दृश्य

(स्थान—उज्जैन का बड़ा जनमार्ग। अभिजात और मध्यम श्रेणी की जनता घबराहट में इधर से उधर भाग रही है। जिसमे जितना बन सकता है अपनी सामग्री लेकर पलायन कर रहा है। केवल निम्न श्रेणी के और दरिद्र जन, भाग दौड़ नहीं कर रहे हैं। भिक्षु इत्यादि स्थिर हैं। समय—दिन।)

एक नागरिक—(**भागते हुए**) सर्वनाश हो इन कापालिकों का। इन्हों ने हमको मिटवा दिया।

दूसरा—(भागते हुए) अरे, इस कालक ने शकों को बुलाया, कापालिकों ने नहीं।

(एक श्रमजीवी का प्रवेश)

श्रमजीवी—हम श्रमजीवी कहां जायं? हमारे लिए तो कहीं भी कोई आसरा नहीं। यहीं कहीं खपना पड़ेगा। (जाता है)

(दो बौद्ध भिक्षुक आते हैं।)

एक—ये सब व्यर्थ ही भाग-दौड़ मचा रहे हैं।

दूसरा—संघ की शरण में आजावें एक बाल भी बांका न होगा।

(दोनों शांतिपूर्वक जाते हैं।)

(कुछ कापालिकों का प्रवेश। सब सैनिक वेश में हैं। आगे पुरन्दर है। वह चमकता हुआ कौशेय झंडा लिए हुए है। भगवां भूमि पर रंग-बिरंगा मयूर। कापालिकों के गले में मुंड माला नहीं है। केवल पुष्प मालाएं डाले हैं। कुछ फूल टूटकर गिर गए हैं, कुछ मुर्झा गए हैं। पुरन्दर के गले की माला का सूत्र टूट गया है और टूटी हुई माला गले के पास कपड़े में अटक गई है।)

पुरन्दर—नगर निवासियो! बन्धुओ!! और देवियो!!! धैर्य मत छोड़ो। हम लोग तुम्हारी रक्षा के लिए शकों का मर्दन करने हेतु बढ़ रहे हैं। हथियार संभालो। शत्रु का सामना करो। भगदड़ मत मचाओ। ठहरो। ढाढ़स रखो। पूर्व पुरुषों के नाम पर कलंक न लगाओ।

(भागने वाले नहीं सुनते। वे भागते जाते हैं।)

एक कापालिक—गुरुदेव, ये भगोड़े वे लोग हैं जो दिन-रात यह कहते नहीं अघाते थे कि बलिदान मत करो, हिंसा मत करो, मठ बनाओ और भीख मांगो।

पुरन्दर—अब इन बातों के कहने से कोई लाभ नहीं। (**भागते हुए लोगों से**) सिर पर पैर रखकर भागने से खड्ग और धनुष्य-बाण हाथ में लेकर लड़ते हुए मरना कहीं अधिक अच्छा है। (**लोग नहीं मानते**) शङ्कर के वीरो, अपनी मयूर पताका को देखो। वह शकों को चबा डालने और निगल जाने के लिए उन्मत्त है। चलो, बढ़ो। हम संख्या में थोड़े होते हुए भी शङ्कर के त्रिशूल और मयूर का मान रक्खेंगे। शत्रु आर्यजन की पीठ नहीं देखपाता, उसके वक्ष को देखता है। जैसे अङ्गारे में आंच, खड्ग में धार, शूल में तीक्ष्ण अग्नि, सूर्यरश्मि में तपन, जलपात में शिला को चूर करने की शक्ति और बिजली में कौंध होती है उसी प्रकार आर्यजन में वीरता। बढ़ो! बढ़ो!!

(**नेपथ्य में**—'राजन्य, घोड़ों पर से उतर पड़िए। जनता का एक भाग रुष्ट होकर आपको मारने के लिए आ रहा है। उतरिए शीघ्र। देवी, आप भी उतरिए'। (**कापालिकों का प्रस्थान**।)

(**नेपथ्य में ही**)—'कहां गया गर्दभिल्ल? कहां गया वह आलसी विलासी? अभी घोड़े पर चढ़ा हुआ कहीं लुप्त हो गया। उसी की असावधानी से आज उज्जैन की दुर्गति हो रही है।'

(**दूरी पर शकों का धौंसा और नगाड़ा बजता है।**)

(**नेपथ्य में**)—'भागो, भागो, शक आगए'।

(**दूसरी ओर से गर्दभिल्ल और सुनन्दा का दो अङ्गरक्षकों सहित प्रवेश। गर्दभिल्ल घबराया हुआ है। सुनन्दा दृढ़ और निश्चित है। अङ्गरक्षक आगे बढ़ जाते हैं। भीड़ अपनी चिंता में व्यस्त आती और भागती जाती है।**)

सुनन्दा—नाथ, विह्वल मत होइए। अभी अवसर है। चलिए, वन की ओर निकल चलें।

गर्दभिल्ल—वन की ओर ? हां, वन की ओर। वहां से विदिशा का मार्ग पकड़ना है। ऐसे समय स्त्रियों का साथ बड़ा दुःखदायक होता है। बड़ी रानी और राजकुमार को दूर गांव में पहले ही भेज दिया सो अच्छा रहा। तुमको भी पहले ही कहीं भेज दिया होता तो—ठीक रहता।

सुनन्दा—कितने दिन से कह रही थी कि निकल चलिए, परन्तु आप समय पर निश्चय करना तो जानते ही नहीं हैं।

गर्दभिल्ल—मुझको अपशब्दों से घायल मत करो देवी। मैं विपत्त में हूं।

सुनन्दा—मैं बहुत सुख में हूँ न ? जिस समय बड़ी रानी को गांव भेजा था, उसी समय मुझको भी भेज देते। (**उसकी आंखों में आंसू झल झला आते हैं**)।

गर्दभिल्ल—मैं जानता हूँ स्त्री उतनी मीठी नहीं होती जितनी तीखी होती है। चलिए चलिए।

सुनन्दा—एक दिन वह उद्यान वाला था ! (**गर्दभिल्ल को दुखी देखकर**) परन्तु नहीं—।

(**भागती हुई जनता के कुछ लोग इन दोनों को घेर लेते हैं। 'मारो मारो यही है हमारा द्रोही राजा'। शकों का धोंसा और नगाड़ा निकट बजता हुआ सुनाई पड़ता है। 'वह मारा कापालिकों को'। 'वह मार भगाया मयूर–ध्वजों को।' की पुकार नेपथ्य में होती हैं। गर्दभिल्ल भयभीत और विचलित हो जाता है।**)

सुनन्दा—(**आड़े आकर**) नागरो। मारना है तो मुझको मारो। राजा का कोई दोष नहीं। मैंने ही इनको युद्ध में जाने से रोका। मैं तुम्हारी अपराधिनी हूँ। मुझको मारो। (**नेपथ्य में 'भागो, भागो' का शब्द होता है। गर्दभिल्ल के अंगरक्षक लौट पड़ते हैं**)।

एक अंगरक्षक—(खड्ग खींचकर) क्यों रे नीचो ! लुटेरो !!

सुनन्दा—अपने ही जन हैं। मत मारो। चलो, चलो। नागरिको, भागो।

(वे नागरिक भाग जाते हैं।)

दूसरा अंगरक्षक राजन्य, देवी, अब विलम्ब करने से हम सब पकड़े और कतर डाले जायंगे। चलिए।

(प्रस्थान)

(दूसरी ओर से धोंसों और नगाड़ों इत्यादि बाजों की ध्वनियों के साथ विजयी शकों का प्रवेश। सबसे आगे उषवदात। बीच में कालकाचार्य और वकुल।)

उषवदात—वीर शको, उज्जैन निवासी बचकर भागने न पावें। वन्दी करलो। कापालिकों और शैवों को जहां पाओ मार डालो। लूटो। नगर में आग लगादो। एक एक शक को दस दस दास और दासिया पुरस्कार में मिलेंगी। चाहे उनको अपने पास यहां रखना, चाहे अपने जन्मदेश में भेज देना। उज्जैन तुम्हारी और उज्जैन का सम्पूर्ण जन, धन तुम्हारा। केवल राज भवन में आग मत लगाना, क्योंकि उसमें अमूल्य वस्त्र और आभूषण होंगे। राजा को वन्दी कर लेना और सुनन्दा नाम की राजकन्या को आदर पूर्वक सुरक्षित रखना। वे राज भवन के वन्दीगृह में मिलेंगी। समझ में आगया मेरा आदेश ?

शकसेना—आगया शाहानुशाह, आगया महाराज, महाक्षत्रप।

उषवदात— शकों की जय। सब शकों की जय।

(वे सब जाते हैं। कालकाचार्य का सिर नीचा है।)

कालकाचार्य—(रुद्ध स्वर में) वकुल ! वकुल !! मुझको कुछ भी दिखलाई नहीं दे रहा है और न कुछ सुनाई ही पड़ रहा है। व्यग्रता

के साथ देखो, आतुरता के साथ चलो। सुनन्दा की रक्षा करो, क्योंकि शक—शक—

वकुल—चलिए। चिन्ता मत करिए। शक अपने ही हैं।

(वे दोनों जाते हैं।)

पांचवां दृश्य

[स्थान—उज्जैन का राजभवन। ऊंचे आसनपर स्वर्ण और रत्नों से जड़ी चौकी। उषवदात सैनिक वेष में मुकुट लगाए बैठा हुआ है। नीचे दोनों ओर अर्द्ध वृत्ताकार में उसके मन्त्री और दलपति भड़कीले वस्त्रों में चौकियों पर बैठे हैं। राजभवन के द्वारों पर द्वारपाल और चोबदार हैं। उषवदात के दोनों पार्श्वों में शक जाति की चमर, छत्र व्यंजन और ताम्बूल वाहिकाएं। उषवदात के ऊपर चांदी सोने का चंदोवा और चंदोवे के घेरे पर रेशम की गुत्थियों में मोती की झालरें। धूपदानियों में सुगन्धित द्रव्य जल रहे हैं। समय—दोपहर के उपरान्त।]

उषवदात—सारी भूमि के प्रत्ययों का परावर्त हो गया और सब कर बिना किसी कृपालुता के लगा दिए महामन्त्री ?

महामन्त्री—हां शाहानुशाह। पद्रकों को भी नहीं छोड़ा गया। उद्रांग, उपरिकर, धान्य, हिरण्य इत्यादि सम्पूर्ण कर लगा दिए गए हैं। खातों में सब लिख लिया गया है। अक्षपटलिकों, करणियों और प्रमुखों को कठोर आदेश दे दिया गया है कि यदि अल्पांश भी आलस्य या उपेक्षा की तो खाल खींच कर भुस भर दिया जायगा। करसंग्रह बहुत कुछ हो चुका है। आदेय बहुत कम है। दंडविधान पूरी दृढ़ता के साथ व्यवहार में लाया जारहा है।

उषवदात—बाल्हीक से, दास दासियों के पहुंच जाने की सूचना आगई ? सब पहुंच गए ?

महामन्त्री—उज्जैन के चौथाई जन दास बनाकर भेजे गए थे। उनमें से कुछ स्त्रियां और बच्चे मार्ग में मर गए। कुछ बीमार हो गए थे, उनका ले जाना दुस्सह था इसलिए उनको समाप्त कर दिया गया। जिन स्त्री पुरुषों को यहीं दास बनाकर रख लिया गया था वे हमारे शक सैनिकों की सेवा टहल में बहुत सुखी हैं।

उषवदात—किस जनपद के लोग अधिक सिर उठाए हैं ?

महामन्त्री—हमारी सीमाओं पर जिनका सम्पर्क यौधेयों और नागों से है वे कुछ उपद्रव कर रहे हैं। हम उन जनपदों के स्त्री, बालकों, ब्राह्मणों और पशुओं का नाश कर रहे हैं। शैव और वैष्णव मन्दिरों को नष्ट कर रहे हैं। काम दृढ़ता पूर्वक चल रहा है।

उषवदात—प्रत्येक ग्राम के लिए एक एक भोगपति नियुक्त कर दो। उसको आज्ञा हो कि जिस ग्राम में एक मनुष्य भी सिर उठावे तो उस ग्राम के अष्टकुलपति, कुलपति, ग्रामिक और प्रमुख की तुरन्त अपने क्षत्रप को सूचना दो। क्षत्रपको आदेश है कि सूचना प्राप्त होते ही वह तुरन्त ऐसे पापी को कटवाकर फिकवा दे, और प्रमुखों के हाथ पैर कटवादे।

महामन्त्री—जो आज्ञा।

उषवदात—उत्तर का क्या समाचार है ?

महामन्त्री—महा क्षत्रप कुजुल, लियक, पदक, शोडास से उत्तर और पूर्व से यौधेयों और उत्तर—मालवों को घेर रहे हैं। नलपुर का एक व्यक्ति इन्द्रसेन सम्पूर्ण देश में भ्रमण कर करके विद्रोह का झंडा खड़ा करवा रहा है, उसके पीछे दास ने गूढ़ पुरुष और सर्वगत नियुक्त कर दिए हैं। उसका लोगों में कुछ प्रभाव है। यातो वह शीघ्र ही हमारे

किसी चर द्वारा मारा जायगा या बन्दी किया जायगा। आजकल यह इन्द्रसेन विदिशा और दशार्ण्ह प्रदेशों के जनपदों को भड़काने में लगा हुआ सुना गया है !

उषवदात—हूं ! जहां कहीं भी भगवान बुद्ध और उनके मत-प्रचार महात्माओं के बाल, नख अस्थियां भोजन करने के या भिक्षा के पात्र या कोई भी चिन्ह प्राप्त हों, उनके ऊपर आदर और भक्ति के साथ स्तूप तथा चैत्य निर्माण करो। विशाल भवन खड़े करो और उन पर जातकों की कथाएं सुन्दर मूर्तियों में उभारो। शिल्पयों को पकड़ो उनको भोजन दो, और, यदि इस पर भी काम करने में आना कानी करें तो मार डालो। बौद्ध भिक्षुओं के लिए सब प्रकार की सुविधाएं दो। नासिक की गुहाओं में लेख उत्कीर्ण करा दिए गए ? विजय का पहला लम्बा डेरा मैंने वहीं डाला था। इसको अब दो वर्ष होने आते हैं।

महामंत्री—लेख अभी नहीं उत्कीर्ण किए हैं श्रीमान् !

उषवदात—अभी तक नहीं उत्कीर्ण किए गए महामन्त्री !!

महामंत्री – (कांप कर) शाहानुशाह, इसमें मेरा ही दोष है जो मैंने अभी तक पत्र पर लेख नहीं बनवा पाया।

उषवदात—नहीं, कोई बड़ा अपराध नहीं। मुझको भी स्मरण नहीं रहा।

(कालकाचार्य और वकुल का पीतरंग के कोपीन पहिने हुए प्रवेश। परस्पर अभिवादन के उपरान्त उषवदात उनको सम्मान के साथ ऊँचे आसनों पर बिठलाता है।)

उषवदात—आचार्य, आप हमारे धर्म-महामात्र हैं। नासिक की त्रिरश्मि नामक गुहा में शकों की विजय के सम्बन्ध में लेख उत्कीर्ण कराना है। आप लेख रच दीजिए। एक लेख होगा विजय सम्बन्धी दूसरा होगा भिक्षुओं को एक गुहा के प्रदान के विषय में।

कालकाचार्य—संस्कृत में या प्राकृत में शाहानुशाह ?

उषवदात—मैं समझता हूँ धर्म महामात्र जी, कि दोनों के मिश्रण से लेख बनाया जाय। प्राकृत यहां साधारण जन बोलते और लिखते हैं, संस्कृत यहां के अभिजातों और विद्वानों की भाषा है।

कालकाचार्य—सुन्दर कल्पना है शाहानुशाह ! मैं अभी लेख लिख कर महामन्त्री को दिए देता हूं। एक रहेगा—आपकी हुंकारमात्र से मालव पलायन कर गए जब कि आप उत्तमभद्रों की रक्षा के लिए आए थे, और दूसरे में भिक्षुओं को गुहा प्रदान कर देने की बात होगी।

उषवदात—धन्यवाद आचार्य।

महामन्त्री—मैं तुरन्त दोनों लेख उत्कीर्ण करा दूँगा।

उषवदात—उस आज्ञा के प्रचार का क्या फल हुआ जिसमें मैंने घोषित किया था कि जनता के सब लोग अपने को शक कहें, कोई भी अपने को आर्य न कहे और कोई भी यज्ञ न करे।

महामन्त्री—उस आज्ञा का पालन हो रहा है शाहानुशाह। जो आज्ञा पालन नहीं करता, वह मार डाला जाता है। केवल बौद्ध और जैन अवध्य हैं।

(एक व्यापारी को दो सैनिक घसीटते हुए लाते हैं। उनका दलपति महामन्त्री के कान में कुछ कहता है।)

उषवदात—यह कौन है ? इसका क्या अपराध है ?

महामंत्री—शाहानुशाह, यह इस नगर का बहुत बड़ा सेठ है। इसके पास लाखों का द्रव्य है। स्वर्ण रत्नादि। यह अपने सिर के बालों के जूं पकड़ पकड़ कर मारते पाया गया है। मार्ग से लगे हुए चबूतरे पर दिन दहाड़े इस कुकर्म को कर रहा था यह दुष्ट !

उषवदात—तुम कौन हो जी ?

सेठ—महाराजाधिराज, मैं यहां का एक दीन सेठ हूँ! पुराना घराना है। गण का सदस्य रहा हूँ। अपने को शक कहता हूँ।

उषवदात—बालों के जूं बीन बीन कर मारने का अपराध किया? शक हो या नहीं इससे हमको इस समय कुछ प्रयोजन नहीं है।

सेठ—शाहानुशाह, पहले मेरे घर भर में किसी के बालों में जूं नहीं थे, जबसे बाहर से आए हुए अपने नए ग्राहकों में मिलने जुलने और बैठने उठने लगा तब से न जाने इनके दल के दल मेरे घर में क्यों और कैसे घुस पड़े।

उषवदात—अर्थात् ये जूं तुमको हमारे शकों ने दिए!!! यही न?

सेठ—जी—जी—जी—महाराजाधिराज, मैं यह नहीं कहता। मैंने यह कहां कहा।

उषवदात—अच्छा कितने जूं मारे तुमने!

सेठ—महाराजाधिराज, शाहानुशाह, जब बहुत पीड़ित होगया तब केवल तीन जूं मारे। अब भी बालों में बहुत हैं। मरा जारहा हूँ उनके काटने से। खुजलाते खुजलाते थक गया हूँ।

कालकाचार्य—भगवन्! जूं मारे इसने!! महापाप!!! महा अपराध!!!!

उषवदात—इतनी क्रूरता! इतनी निर्दयता!! अच्छा सेठ हम तुम्हारा सम्पूर्ण बोझ हलका करे देते हैं। धर्ममहामात्र, इस अपराध का क्या दण्ड है?

कालकाचार्य—प्राण बध, अथवा पूरी सम्पत्ति अपहृत करके राज-कोष में लेली जावे।

सेठ—मरा, मरा, मैं मरा! मैं शक होगया हूँ, दीनबन्धु। मैं शक हूँ।

उषवदात—उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। मैं तुम्हारे ऊपर बहुत दया करके तुमको प्राण बधका दण्ड नहीं देता हूं, परन्तु तुम्हारी सम्पूर्ण सम्पत्ति अपहृत करता हूँ। आचार्य, आधी सम्पत्ति राजकोष में जायगी और आधी की लागत से एक विशाल विहार बनाया जायगा। ले जाओ इसको यहां से।

(सेठ को सैनिक घसीट ले जाते हैं। वह रोता किलपता जाता है।)

उषवदात—राजकुमारी सुनन्दा का पता चला महामंत्री ?

महामन्त्री—(कालकाचार्य की ओर कनखिओं देखकर) हां शाहानुशाह, वे विदिशा के जङ्गलों में कहीं, गर्दभिल्ल के साथ हैं।

कालकाचार्य—सभा में इस प्रसङ्ग पर कुछ चर्चा नहीं करना चाहता हूं।

(क्षोभको संयत करके)

उषवदात—इतना तो बतला ही दीजिए कि अब क्या किया जाय आचार्य ?

कालकाचार्य—(भड़ककर) मेरे मन में अब और कुछ नहीं है। मैं शीघ्र ही धर्म प्रचार के कार्य निमित्त बाहर निकल जाऊंगा। (गिरे हुए स्वर में) यदि मिल गई तो धर्म में फिर से दीक्षित करूंगा।

उषवदात—(पिछली बात को अनसुनी करके) ठीक भी है आचार्य, जब गर्दभिल्ल के साथ उनका विवाह होगया है तब कुछ और करना व्यर्थ है। गर्दभिल्ल को यदि पाऊं तो अवश्य मरवा डालूं।

कालकाचार्य—(खिन्न स्वर में) विवाह नहीं है, बलात्कार है। इस विषय पर मैं अब एक शब्द भी नहीं कहना सुनना चाहता हूँ।

वकुल—(दृढ़ता के साथ) निबट लेंगे हम इस समस्या से।

(चार सैनिक एक कापालिक को बाँधे हुए लाते हैं। उनका नायक महामन्त्री के कान में कुछ कहता है।)

उषवदात—यह कौन है ?

महामन्त्री—कापालिक है, अन्नदाता।

उषवदात—कापालिक !

कालकाचार्य—कापालिक !!!

वकुल—कापालिक ! कापालिक !! हे भगवन् !!!

उषवदात—इसको क्यों ले आए ?

महामन्त्री—यह अपने कपड़े के छोर में मांस बांधे हुए नगर के भीतर पकड़ा गया है।

कालकाचार्य—मांस बांधे हुए !!!

उषवदात—क्यों रे पापी, मांस बांधे था ? काहे का मांस था ?

कापालिक—(निर्भीकता के साथ) खाने को गांठ में कुछ था नहीं। भीख हम मांगते नहीं। पत्थर के डेले से एक कपोत मार लिया। खाने के लिए उसके मांस को बांध लाए। वस्त्र से रक्त निकलता देख कर सैनिकों ने पकड़ लिया और मुझको मारा। विवश हो गया अन्यथा दो चार धप मैं भी देदेता।

उषवदात—इसका दण्ड धर्ममहामात्र ?

कालकाचार्य—प्राणबध। इससे कम और कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता। नगर के भीतर मांस लाने से सम्पूर्ण उज्जैन नगरी अपवित्र हो गई है। वह इसके प्राणबध से ही शुद्ध हो सकेगी।

उषवदात—लेजाओ इसको और तुरन्त इसका बध करो।

कापालिक—करदो मेरा बध। शंकर मुझ सदृश करोड़ों इस भूमि में उत्पन्न करेंगे जो शकों को निर्वन्श कर के रहेंगे।

(कापालिक को सैनिक घसीट कर लेजाते हैं)

कालकाचार्य—शाहानुशाह, अब मैं अपने पद को त्यागता हूं। अहिंसा धर्म के प्रचार के लिए मैं सुराष्ट्र इत्यादि प्रदेशों में विचरण करूंगा।

उषवदात—आपकी कमी हमको बहुत खलेगी।

कालकाचार्य—मेरा निश्चय है शाहानुशाह।

उषवदात—अच्छा, आचार्य, खेद के साथ आपको विदा देनी पड़ेगी। क्या आप वकुल को भी साथ ले जायंगे?

कालकाचार्य—न, मैं अकेला जाऊंगा! वकुल आपके ही सम्पर्क में रहेगा। वह धर्म सम्बन्धी विषयों में आपकी सहायता करता रहेगा।

वकुल—(हाथ जोड़कर) गुरुदेव!

कालकाचार्य—तुम यहीं रहो। गर्दाभिल्ल को ढूंढ़ने में उषवदात की सहायता करो। सुनन्दा मिले तो, उसको मेरे निकट कर जाना।

(कालकाचार्य जाता है। द्वार तक उषवदात इत्यादि उसको पहुंचाते है।)

उषवदात—(आसन ग्रहण करने पर) वकुल जी, मैं आपको धर्म महामात्र बना देता, परन्तु आपकी आयु मन में संकोच उत्पन्न करती है।

वकुल—इस काम में मेरा चित्त भी नहीं लगेगा। सर्वगत का काम करने का अभिलाषा मुझको अवश्य है। मै यहा की भौगोलिक स्थिति से परिचित हूँ।

उषवदात—हो भी तुम उसके उपयुक्त। मैं हर्षपूर्वक तुमको अपना प्रधान सर्वगत इसी समय नियुक्त करता हूं। तुम में यवनो की चतुरता और यहा के लोगों की कुशलबुद्धि है। अनेक भाषाओ के जानकार हो।

गर्दभिल्ल, इन्द्रसेन, विदिशा का रामचन्द्र नाग इत्यादि मेरे परम शत्रु हैं। इनको मारो पकड़ो या जो चाहो, चाहे जिस प्रकार, करो और समय समय पर मुझको अपनी गतिविधि का परिचय देते रहो।

वकुल—एकान्त में कुछ विनय करना चाहता हूँ।

उषवदात—अवश्य। सर्वगत का काम ही एकान्त में बात करने का है। मेरे निकट आओ। (**वकुल जाता है**) कहो। बिना संकोच के कहो। सर्वगत अवध्य और अदण्डनीय है।

वकुल—(**धीरे से**) अनेक वर्षों के परिश्रम से कुमारी तन्वी गायन, वादन और नृत्य में अत्यन्त कुशल हो गई हैं। संस्कृत, प्राकृत और जनपदों की बोलियों का उनको ज्ञान है। उनकी भी इच्छा इस कार्य के करने की है। वे समर्थ हैं। आपकी अनुमति हो तो मैं उनको साथ लेता जाऊँ?

उषवदात—मैं सहमत हूँ। महाक्षत्रप भूमक क्या कहेंगे मैं नहीं कह सकता। सुनता हूँ कि वे कपिशा से भी आगे निकल गए हैं। न मालूम कब लौटें—और लौटें भी या नहीं। क्या तन्वी तुम्हारे साथ विवाह करेगी? हम लोग वर्ण भेद जात पांत कुछ नहीं मानते। तुम सुन्दर हो और कुशल हो। भूमक कोई आक्षेप नहीं करेंगे। क्या वह तुमसे प्रेम करती है?

वकुल—(**संकोच के साथ**) अभी तो ऐसा कुछ नहीं है। उनका मुझ पर स्नेह है, केवल इतना जानता हूँ।

उषवदात—वह वयस्क हो गई है। उसको अपने वर के चुनने का अधिकार हमारी प्रथा के अनुसार है। मैं उसको सर्वगत का काम करने की अनुमति देता हूँ। परन्तु उसकी रक्षा का भार तुम्हारे ऊपर रहेगा।

(पीछे की खिड़की से तन्वी का प्रवेश।)

तन्वी—(धीरे से) रहा तो शाहानुशाह, मैं अपनी करलूँगी। मैं शक कन्या हूँ। सब तरह के हथियारों का प्रयोग जानती हूँ। जंगलों पहाड़ों, नदियों, कठोर परस्थितियों और जटिल समस्याओं में धसने का मुझको व्यसन है। मैंने इस इन्द्रसेन के विषय में बहुत सुना है। यदि मैं इसको मार सकी या किसी तरह वश में कर सकी और आपके चरणों में उसको ला सकी, तो मेरा जन्म सफल होगा। आप मुझको आशीर्वाद दीजिए।

उषवदात—जियो बेटी, सफल होओ अपने कार्य में। सहायता के लिए, जब जितनी सेना चाहोगी, तुरन्त तुम्हारे पास पहुँचेगी।

तन्वी—अनुग्रहीत हुई।

(वकुल और तन्वी एक ओर जाते हैं।)

तन्वी—हमलोगों को यहां से शीघ्र वेश बदलकर चल देना चाहिए।

वकुल—बहुत अच्छा।

(वकुल और तन्वी का प्रस्थान)

उषवदात—आज का काम समाप्त हुआ महामन्त्री अब।

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[स्थान—विदिशा से कुछ दूरी पर उदयगिरि की गुहाएं। बेतवा की एक धार के पास विदिशा और नदी, नालों, पहाड़ियों तथा हरे भरे वृत्तों की पृष्ठ भूमि में उदयगिरि की गुहाएं हैं। एक गुहा के सामने कुछ दूर-स्थित एक टीले की स्वच्छ और चौड़ी चकली शिला पर इन्द्रसेन बैठा हुआ है। निकट ही विदिशा का राजा रामचन्द्र नाग। रामचन्द्र नाग की आयु लगभग पचास वर्ष की है। वह दृढ़ और बलिष्ठ शरीर का तेजस्वी व्यक्ति है। त्रिपुंड लगाए है। इन्द्रसेन के भ्रूमध्य में केसर का बिन्दु। दोनों योद्धा वेश में हैं। सिर पर छोटे और कुछ ही भड़कीले किरीट बांधे हैं। सरलता ने उन दोनों के तेज को और भी दीप्त कर दिया है। इन्द्रसेन की आयु नौ दस वर्ष आगे निकल गई है, परन्तु उसकी सुरूपता अभिन्न है। केवल मूछें कुछ बढ़ गई हैं। बहुत यात्रा और अनवरत प्रयत्न के कारण वह कुछ सांवला पड़ गया है। समय संध्या के उपरान्त। ऋतु मधुमास का प्रारम्भ]

रामचन्द्र नाग—आर्य, जब ब्रह्मा, विष्णु, और महेश एक ही परमात्मा की भिन्न भिन्न शक्तियों के पृथक पृथक नाम हैं तब विष्णु की अर्चना का विशेष हठ आप क्यों करते हैं ? विज्ञान वह है जिसे हम जानते हैं, दर्शन वह है जिसे हम नहीं जानते।

इन्द्रसेन—सहज ही वरदान देने वाले शंकर; पालनपोषण करने वाले होते हुए भी वास्तव में रुद्र हैं। दुष्टों और पीड़कों का विनाश करने के लिए उनको अपना अत्यन्त विशाल कर्म, तांडव नृत्य, करना पड़ता है। उनकी संहार-वृत्ति में नए उद्भव, नवीन उत्पत्ति के भी बीज रहते हैं, यह ठीक है, परन्तु हमारे लिए अकेला रुद्र पर्याप्त नहीं है। हमको सत्य और सुन्दर भी चाहिए—रुद्र का शिव रूप। नाश करने में समय कम लगता है, सौन्दर्य और कल्याण के सृजन के लिए बहुत समय चाहिए। इसलिए परमात्मा का जो रूप इस कल्याण कार्य के लिए अधिक व्यापक हो सके, उसकी ओर विशेष ध्यान देना ठीक होगा। इस समय तो इसकी और भी अधिक आवश्यकता है।

रामचन्द्र—इस समय तो रुद्र के तांडव की अत्यन्त आवश्यकता है। शकों ने लगभग सम्पूर्ण आर्यावर्त को पैरों तले रौंद रखा है। मालव, नाग, आरक और बौद्ध भद्र भी जो उस देशद्रोही कालक की आड़ में शकों की आंधी को मध्यदेश में ले आए, महाकष्ट में हैं। वर्णों का उच्छेदन हो रहा है। वर्णसंकर बढ़ते चले जाते हैं। आतंक में आकर अनेक आर्य अपने को शक तक कहने लगे हैं! वेदों का पढ़ना पढ़ाना और यज्ञादि देश के एक बड़े भाग में निषिद्ध कर दिए गए हैं। त्यागी विद्वान ब्राह्मणों को कोई आंशिक आदर भी नहीं देता। छोटे छोटे से अपराधों पर लोगों को प्राणवध का दण्ड देने की प्रथाएँ चला दी गई हैं। जनता की भूमि का स्वामी राजा बनाया जा रहा है। पुराने नामों के जनसेवकों को नए अत्याचारी अधिकारों से विभूषित किया जा रहा है। जूं, मशक,

और खटमल की रक्षा के मिस आर्यों के रक्त की नदियां बहाई जा रही हैं। अभिजातों, कुलीनों और तपस्वियों को अपदस्थ करने के लिए, पद्ममों और केवटों को शकों ने क्षत्रिय बना दिया है! मन्दिरों को ध्वस्त कर करके एडुकों की पूजा कराई जा रही है!! देव, यदि यह समय भी रुद्र शंकर के तांडव का नहीं है तो क्या वह समय तब आयगा जब आर्य नाम तक का संसार से लोप हो जायगा?

इन्द्रसेन—भक्ति और पुरुषार्थ का, तपस्या और जीवन का, त्याग और भोग का, विनय और महिमा का, सौन्दर्य और तेज का, बुद्धि और बल का, विशालता और स्फूर्ति का, कोमलता और दृढ़ता का, क्षमा और दंड का, क्रिया और विचार का, शान्ति और सक्रियता का समन्वय वैष्णव धर्म है। शकों को पराजित करके क्या हम उनके बाल बच्चों का बध करेंगे? कभी नहीं, राजन। यदि वे हमारी संस्कृति के होकर हमारे देश में रहेंगे तो उनकी उसी प्रकार रक्षा की जायगी जैसी आर्य जनों की, की जाती है।

रामचन्द्र—आप यह कहते हैं, और वे लोग हमारे देश के रक्त से दिन रात, प्रत्येक क्षण, तर्पण करते चले जा रहे हैं!

इन्द्रसेन—इसका निवारण करने के लिए विष्णु के एक हाथ में गदा है। संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने के लिए और दुर्वृत्तियों का दमन करने के लिए दूसरे हाथ में चक्र है। स्पष्ट स्वर में नीति और शौर्य के मेल की घोषणा करके जन को जगाने के लिए तीसरे हाथ में शंख है और विश्व में, सर्वत्र सांवली सलोनी स्मितमयी हरी दूब बढ़ाने और जीवन को पुरस्कार तथा वरदान देने के लिए चौथे हाथ में कमल है।

रामचन्द्र—फिर विष्णु के सामने घांघरा, घुँघरू और ओढ़नी पहिन कर पुरुष नाच क्यों उठे हैं?

इन्द्रसेन--यह भक्ति का वीभत्स है। भक्ति का वास्तविक रूप तन्मयता है, तादृशता है। कुछ लोग शंख, चक्र और गदा को त्याग कर केवल कमल की पूजा में लीन हो जाते हैं। यह उनकी भूल है। भक्ति और पुरुषार्थ का; हंस और मयूर का, मेल होना चाहिए।

रामचन्द्र—मैं समझा नहीं, देव।

इन्द्रसेन—हंस, बुद्धि-विवेक, प्रज्ञा, मेधा, भक्ति और संस्कृति का प्रतीक है; मयूर, तेज, बल और पराक्रम का। दोनों का समन्वय ही आर्य संस्कृति है। जीवन और परलोक—दोनों की प्राप्ति का एकमात्र साधन।

रामचन्द्र—कापालिकों ने प्रण किया है कि वे शकों के मुण्डों की माला पहिनेंगे और उनके शरीर की राख को अपने तन में मलेंगे। क्या वह अनुचित है?

इन्द्रसेन—इससे बढ़कर अनुचित और क्या होगा? जब शकों की पराजय हो जायगी और संस्कृति फिर अपने प्रबल मनोहर रूप में व्याप्त होने को होगी तब ये कापालिक किस की मुण्डमाला पहिनेंगे? किस की भस्म शरीर में लपेटेंगे?

रामचन्द्र—मैं माने लेता हूँ कि कापालिक उचित नहीं कर रहे हैं। परन्तु आप जिस समन्वय की बात कह रहे हैं वह जनता की समझ में कैसे आवेगा?

इन्द्रसेन—हमारे समाज में अतीत का दिया हुआ यदि बहुत सा ग्राह्य है तो बहुत सा अग्राह्य भी है। एक समय में जो आचार विचार मानव की उन्नत्ति में साधक हुए थे वे आज उसके विकास में बाधक हो रहे हैं। मानव बढ़ गया और वे आचार विचार संकीर्ण हो गए हैं, वे मानव को कस रहे हैं, और उसको दुर्बल बना रहे हैं। अब वे अग्राह्य हैं। हम लोग अपने नित्य के जीवन और व्यवहार से इसको स्पष्ट कर

सकते हैं। जनता चेतन है। जनता के सचेत विकास का आचार अनुगमन करता है। हमारी बात उसकी समझ में शीघ्र आजायगी।

रामचन्द्र—जनता तो नए नए मन्दिर और नई नई मूर्तियां बना उठेगी।

इन्द्रसेन—ठीक है, आर्य। आप अपने वंश में सर्पों की ही पूजा को देखो। एक समय में, सर्प रक्षा और आक्रमण का प्रतीक था। इसीलिए वह अपनाया गया, परन्तु कालान्तर में प्रतीक का अर्थ और अभिप्राय लोग भूल गए। और उसके रूप को पूज उठे!

रामचन्द्र—किसी दिन आपके हंस मयूर की भी यही दशा होगी, देव।

इन्द्रसेन—न होगी आर्य। ये दोनों पक्षी सुन्दर हैं। उनकी कल्पना नई है और मैं समन्वय का प्रयोजन सीधा और स्पष्ट समझाता फिरता हूँ, इसलिए इनके लिए मन्दिर नहीं बनाए जायंगे। वे केवल हमारी पताका पर रहेंगे जिसके नीचे समस्त आर्यावर्त शकों से लड़ रहा है, लड़ेगा, और उनको पराजित करेगा। फिर हंस-मयूर आर्यों के विवेक में समा जायंगे।

रामचन्द्र—आन्ध्रनरेश शातकर्णि ने भी मान लिया हंस मयूर को? उसकी ध्वजा पर तो गरुड़ है।

इन्द्रसेन—गरुड़ विष्णु का वाहन है इसलिए आदरणीय है, परन्तु गरुड़ और मयूर परस्पर कलह कर सकते हैं, इसलिए हंस और मयूर हमारे लिए अधिक शोभन हैं। आप तो हंस मयूर के तत्व को समझते हैं? आप तो उसको मानते हैं?

रामचन्द्र—हम नागजन अपने शंकर की मूर्ति उष्णीश में बांधेंगे और हंस मयूरी झंडे के नीचे लड़ेंगे। अपनी गङ्गा, यमुना और देश को अत्याचारी शकों से मुक्त करना चाहते हैं। हम सदा से गणतन्त्रों के

सहायक तथा समर्थक होते चले आए हैं। (मुस्कराकर) हम हंस मयूर के तत्व को समझ सकें या न समझ सकें, परन्तु उसको मानेंगे अवश्य।

इन्द्रसेन—आर्य, मै आपको बधाई देता हूं। हम अवश्य अपने देश को मुक्त करेंगे। कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। हम भगवान की चतुर्भुजी मूर्ति को हृदय में आसीन करके जब चार हाथ लम्बी प्रत्यन्चा वाले धनुष पर छः हाथ लम्बे बाणों को संस्कृति और स्वाधीनता विनाशक अत्याचारी शकों पर चलायेंगे तब 'कहेंगे गणतन्त्रों की जय! कला और शौर्य अनुरक्त विदिशा के नागों की जय !!

रामचन्द्र—(खड़े होकर) मालव गौरव, हम लोगों को आप दृढ़ पायेंगे। और कोई आदेश, देव? कुछ समय उपरान्त उदयगिरि की उस गुफा में जो भीतर से बहुत लम्बी चौड़ी है, थोड़े से नृत्य और गायन की मनोरञ्जन-योजना है।

इन्द्रसेन—मैं सब कुछ कह चुका। केवल एक बात रह गई है। वह यह कि शातकर्णि-यज्ञों का पक्षपाती होने के कारण स्वयं अश्वमेध करना चाहता है। उसको चक्रवर्ती कहलाने का मोह है, वह और कुछ नहीं चाहता—न सोना-चांदी और न किसी जनपद में कोई अधिकार। उसकी इस महत्वाकांक्षा में आप बाधक न होना। समय की याचना है।

रामचन्द्र—राजा का अभिषेक केवल जन-गण के स्वराज्य के लिए होता है। शातकर्णि स्वराट् पद से सन्तुष्ट न रह कर सम्राट बनना चाहता है! गण-तन्त्र इस लोभ को असम्भव कर देने की समर्थता रखते हैं। (आधे क्षण सोचकर) परन्तु समय असाधारण व्याधि का है। हम लोग कोई बाधा नहीं डालेंगे। और आगे का कार्य-क्रम देव?

इन्द्रसेन—शातकर्णि सुराष्ट्र की दिशा में शकों को दबायगा। यौधेय उत्तर दिशा में, आप और मैं मालवों को लेकर दक्षिण और पूर्व

से। जान पड़ता है कि अपनी सेना का युद्ध नर्मदा के निकट कहीं त्रिपुरी के आस पास होगा। शकों के दमन में हमारे काण्वजन भी सहायक होंगे।

रामचन्द्र—अब उस मनोरञ्जन के लिए चलिए। अप्सरा द्वारा शुकदेव की तपस्या को डिगाने का रूपक किया जा रहा है। कन्जुलिका नाम की एक प्रसिद्ध नर्तकी और गायिका अप्सरा की भूमिका साधेगी और श्रीकंठ नाम का एक गुणवन्त शुकदेव का अभिनय करेगा।

(दोनों टेक पर से उतरते हैं। कन्दरा के द्वार पर जाते हैं। पर्दा उठता है। सामने कन्दरा के प्रेक्षणगृह में इधर उधर सुन्दर चित्र बने हैं। और खम्भों तथा बंड़ेरियों पर विविध मूर्तियां। गृह-चिंतक की योजना और कारीगरी का श्रेष्ठ नमूना। शुकदेव के रूप में वकुल ध्यानमग्न बैठा है। तन्वी अब अपने पूर्ण यौवन में है और बहुत सजीली वेश-भूषा में। गायन के साथ नृत्य कर रही है। इन्द्रसेन और रामचन्द्र नाग प्रेक्षण-शाला में आगे। जा बैठते हैं। शाला में चुने हुए दर्शक पहले से बैठे हुए है। गुहा में दीपों का प्रचुर प्रकाश है।)

गीत

(राग देश में)

मैं वसन्त की दूती तुमसे मांग रही इतना वरदान
पलकमात्र के लिए त्याग दो इस मुद्रा का असमय ध्यान
कलियां की पहली मुस्कान,
भौंरे की गरबीली तान,
सुमनों का मधुमय रसपान,
सौरभ का मदरज सन्धान -,
ललक ललक कर चाह रहे हैं इस वन में थोड़ा सामान।
मैं वसन्त की दूतो तुमसे मांग रही इतना वरदान।

तन्वी—(स्नेहसिक्त स्वर में) प्राणों से प्यारे ! बसन्त के सौरभ !! मन की फुलवारी के भ्रमर !!! सुन्दर शुकदेव !

(वकुल एक क्षण के लिए आंख खोलकर फिर बंद कर लेता है।)

इन्द्रसेन—(रामचन्द्र से धीरे से) शुकदेव बहुत सुन्दर पात्र है, और, अप्सरा तो वास्तव में अप्सरा है। कहां के हैं ये लोग ?

रामचन्द्र—कुछ समय से इधर ही रहते हैं। वैसे सुराष्ट्र के निवासी हैं। शकों के आक्रमण के कारण घर द्वार छोड़कर भाग आए हैं।

इन्द्रसेन—ललितकलाओं के कुचलने वाले शको का नाश हंस-मयूर शीघ्र करेगा। ('हंस-मयूर' शब्द का उच्चारण तीव्रता के साथ निकलजाता है। उसको सुनकर तन्वी कुछ चौकन्नी सी होती है। फिर पूर्ववत नाचने गाने लगती है। परन्तु बीच बीच में इन्द्रसेन को आंख गड़ा कर देखती है। वह पहले ध्यानमग्न शुकदेव से कुछ दूर नाचती है, फिर निकट आजाती है। वकुल एक क्षण के लिए उसकी ओर देखता है और फिर ध्यान-मग्न हो जाता है।)

इन्द्रसेन—(धीरे से) शुकदेव का भी अभिनय मनोहर हो रहा है। और अप्सरा तो ललितकला का मानो अवतार ही है। ये दोनों परस्पर कौन हैं ? क्या पति-पत्नी ?

रामचन्द्र—सुनता हूँ—भाई बहिन का नाता है। अप्सरा अविवाहित है।

(थोड़ी देर में अभिनय समाप्त होता है और वे दोनों दर्शकों के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। तन्वी की दृष्टि एक क्षण के लिए इन्द्रसेन पर टिक जाती है।)

इन्द्रसेन—मुझको विदिशा से शीघ्र चला जाना है, नहीं तो एकाध दिन तुम लोगों का अभिनय और देखता। शकों की शक्ति का नाश

करने के उपरान्त अवश्य एक दिन तुम्हारा अभिनय अधिक समय तक देखूँगा। तुम लोग हंस-मयूर मत का प्रचार अपनी कला द्वारा बड़ी कुशलता के साथ कर सकते हो।

रामचन्द्र—मैं तुम लोगों को समझाऊँगा हंस-मयूर मत क्या है। यह आर्यों की रक्षा की पताका, विष्णु का शंखनाद और सदाशिव का त्रिशूल है। बोलो हंस-मयूर की जय। सदाशिव की जय।

(सब लोग जय जयकार करते हैं। तन्वी संकेतपूर्ण दृष्टि से वकुल को देखती है।)

इन्द्रसेन—मन्जुलिक, यदि तुम श्रीकंठ की ओर तपस्या के समय, जब इन्होंने आंख खोली, इस प्रकार देखतीं तो कह नहीं सकता इनकी तपस्या रहती या जाती।

(तन्वी मुस्कराकर नमस्कार करती है।)

तन्वी—मैं अनुगृहीत हुई, देव।

(सब दर्शक कन्दरा के बाहर टेक वाले मैदान में आजाते हैं। कन्दरा का पर्दा गिरता है। इसके उपरान्त सब दर्शकों का प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[स्थान-पहाड़ी जंगली मार्ग। आगे आगे सामान ढोने वाले पीछे गर्दभिल्ल और सुनन्दा। गर्दभिल्ल दुर्बल होगया है। कुछ झुका सा। सुनन्दा वैसे स्वस्थ और शान्त है। बोझ ढोने वाले आगे निकल जाते है। समय दिन]

गर्दभिल्ल—न जाने त्रिपुरी और कितनी दूर है। मैं तो बहुत थक गया हूँ।

सुनन्दा –नाथ, मैं आपको अपनी पीठ पर लिए लेती हूं। मैं नहीं थकी हूँ।

गर्दभिल्ल—(हांफ को संभालने के लिए ठहर कर) मालवजन मुझको नहीं चाहते, शक मुझसे घृणा करते हैं। शैव और वैष्णव मुझको पापी समझते हैं और बौद्ध निकम्मा। जैन तो मुझको नरक का कीड़ा कहने से नही हिचकते। तुम अपनी पीठ पर मेरा निरर्थक बोझ ढोने की बात कहती हो सुनन्दा !

सुनन्दा - मैं आपकी ऊषा, जीवन पुष्पों की वर्षा, प्राणों की बसन्त-संजीविनी और मनका विस्मय अवश्य थी और आप मेरे हृदय के हंस हैं। मैं आपको अपनी पीठ पर फूल सदृश उठा लूँगी।

गर्दभिल्ल—सुनन्दा, मैंने तुमको क्या से क्या कर दिया ! मेरी वासना के उद्गार तुम्हारे भ्रमजाल बने। तुमने मुझको नही पहिचान पाया। मै परिताप के मारे जलता रहता हूँ। ओह ! मुझसा पापी—

सुनन्दा—नाथ, यह बात आपके योग्य नहीं है। आप मानव हैं,—बस यह बात किसी ने नहीं पहिचान पाई।

गर्दभिल्ल—निराश्रय होने पर अब देख रहा हूँ सच्चा प्रेम क्या होता है। जो बात वासना नही सिखला सकी उसको विपद ने स्पष्ट दिखला दिया। देवी, तुम्हारी शक्ति पाकर अब मैं सच्चे जीवन को मुँह दिखलाने योग्य बनूँगा। त्रिपुरी चलकर मै शकों के विरुद्ध अलख को जगाऊँगा। जीवन को निश्चय के साथ तुम्हारे सहयोग से देखूंगा।

सुनन्दा—नाथ, मैं क्या हूँ क्या आप अभी तक नहीं समझे ?

गर्दभिल्ल—ऐं ! हां। हां –ठीक है।

सुनन्दा—मैं आर्य नारी हूँ और धर्म है मेरा आर्य संस्कृति की रक्षा करना।

गर्दभिल्ल—(सीधा खड़ा होकर) देवी, मैं तुम्हारे प्रेम के योग्य होने की निरन्तर साधना करूँगा। चलो, बोझ ढोने वाले कुछ आगे निकल गए हैं। त्रिपुरी और नर्मदा चाहे जितनी दूर हो ऐसा लग रहा है, जैसे इन्हीं पहाड़ियों की ओट में हों। त्रिपुरी में आन्ध्र नरेश के प्रभाव में काण्व राजा का शासन है। मेरे कर्तव्य को वहां आश्रय मिलेगा।

सुनन्दा—(मुस्कराकर) स्वस्ति।

गर्दभिल्ल—स्वस्ति, स्वस्ति। देवी, आज मैं इस स्वस्ति में बज्र के बल का रूप देख रहा हूं।

(प्रस्थान)

(दूसरी ओर से वकुल और तन्वी का धीरे धीरे प्रवेश। इनका सामान ढोने वाले एक ओर बैठ जाते हैं। तन्वी और वकुल में धीरे धीरे बातें होती हैं।)

वकुल—सर्वगत का काम कितना दुष्कर है इसको महाक्षत्रप अनुभव नहीं कर सकते।

तन्वी—सर्वगत का फिर अर्थ ही क्या रहता ? सर्वगत पाटल की पखुड़ियों के साथ तो खेलता नहीं है।

वकुल—तब चलो आगे। विपदों का सामना करने में हम में से कोई नहीं हिचकता !

तन्वी—मैं सोचती हूँ और आगे जाना व्यर्थ है। गर्दभिल्ल हाथ से निकल गया। परन्तु अब उसमें विष नहीं रहा। एक बार मन चाहता था हथियार या विष से मार कर समाप्त करदो और सुनन्दा को बांध ले चलो। फिर सोचा व्यर्थ है। जो समय त्रिपुरी में व्यय किया जाने को है, उसको वेत्रवती और सिन्धु के वनों और नगरों में काम में लाओ। इन्द्रसेन कहीं अधिक भयंकर है। भारत में शकों का, इस समय, सबसे बड़ा वैरी वही है।

वकुल—(**ढले हुए नेत्रों से**) सुनन्दा गर्दभिल्ल को 'नाथ' कैसे मिठास के साथ कहती थी ! सुना था न ? गर्दभिल्ल को नहीं मारना है तो सुनन्दा को पकड़ कर ले चलना निष्प्रयोजन है।

तन्वी—आचार्य की बात का स्मरण है !

वकुल—स्मरण है, परन्तु अपना अधिक स्पष्ट लक्ष्य इन्द्रसेन है।

तन्वी—तब लौट चलो। इन्द्रसेन कहीं बड़ा लक्ष्य है। उस रात उदयगिरि की कन्दरा में वह मेरे नाचने गाने पर मुग्ध सा दिखता था। सहज ही हाथ पड़ जाने की सम्भावना है।

वकुल—उस रात तो तुमने गुफा को प्रदीप्त कर दिया मन्जुलिके ! आह मनकी मन में ही रही—मुझको आंख न खोलने और मूर्ख सा बना बैठे रहने का अभिनय करना पड़ा ! केवल एक बार आंख खोल पाई। तुम्हारा उस दिन का रूप भुलाए नहीं भूलता।

तन्वी—अभिनेता और अभिनेत्रियों का रूप क्या ? सब कृत्रिम। नितान्त छल।

वकुल—मैं उस समय सचमुच सोच रहा था कि मन्जुलिका मुझको मना रही है, मैं रूठा हुआ हूँ और वह प्रेम और वान्छा का अमृत मेरे ऊपर उड़ेल रही है। मैं आँखें मूदे हुए था, परन्तु उस घने अन्धकार में उजाले की कितनी लौ बार बार मुझको दिखलाई पड़ रही थी ! तुम प्रेम में मतवाली थीं, मेरे प्रेम को उकसाने के लिए चिनौतियों पर चिनौतियां दे रही थीं। मैं तुम्हारे रूप और रस की कल्पना कर कर के मन मसोस मसोस कर रह रह जाता था।

तन्वी—मैं चाहती थी कि हमारे दर्शक मन मसोस मसोस कर रह जायं कदाचित् मैं सफल भी हुई। इन्द्रसेन पर मेरा प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

वकुल—मैं अपनी बात कह रहा था। मैं चाहता था कि वह ध्यान जो उस पत्थर के टुकड़े रामचन्द्र शैव को दिया जा रहा था और जो उस रंगीले वैष्णव इन्द्रसेन को, वह मुझको मिलता। मैं कितना कृतार्थ होता !

तन्वी—(**साश्चर्य**) नाटक करने वालियों में प्रेम ! तुम क्या पागल हो वकुल ! अभिनेत्रिया प्रेम करने लगें तो हुआ उनका व्यवसाय समाप्त और कला का हुआ विनाश। प्रेम तो उनके साथ मूर्ख दर्शक करते हैं जो आते हैं नाटकशाला में मनोरन्जन के लिए और लौटते हैं साथ लेकर उन्माद। तुमको रङ्गमन्च पर 'प्राणों से प्यारे' 'वसन्त के सौरभ' 'मन की फुलवारी के भ्रमर' कहने से दर्शक सोचते होंगे मैं उनसे कह रही हूँ—या उनसे कहने लगूं। और देखो, जब अभिनेत्रियां नृत्य करती हुई देह की मोचों, लोचों और भाव भंगियाओं द्वारा अन्तर्निहित आकांक्षाओं को मुक्तता के साथ व्यक्त करती हैं, तब प्रत्येक दर्शक अपने को ही सुन्दरियों के उस प्रयास का लक्ष्य समझने लगता है। यही अभिनेत्रियों का लक्ष्य भेद भी है। (**हँसती है**) दर्शक बोध और अबोध की भंवर में। अभिनेत्रियां निश्चलता के हिमाचल पर। हिमाचल से ध्वनि उठती है 'प्राणनाथ !' और 'वसन्त के सौरभ !!' की, जैसे हिम में कोई सौरभ हो ! अरे !! थकावट से विश्राम पाने के क्षणों में, मैं बहुत कह गई। पर मेरा कथन ठीक है न ?

(दूसरी ओर देखते हुए)

वकुल—मैं चाहता हूँ रङ्गमञ्च से बाहर तुम मुझसे प्राणनाथ कह सको।

तन्वी—(**चिहुँक कर**) अच्छा ! यह बात !! आज यह रङ्ग चढ़ रहा है !!! अभिनेत्री से प्रेम की आशा !!!! और वह अभिनेत्री भी

शकराज की सर्वगत !!!!! मरुभूमि में जल ढूंढ रहे हो वकुल। मेरे कथन को तुम बहुत समझे !

वकुल—सोतो जानता हूँ। मेरी बात को किसी नाटक का घरू संस्करण ही समझ लेना। परन्तु मेरे मन के एक कोने में थोड़ी सी आशा भी है—कोई एक दिन ऐसा आयगा जब नाटक जीवन का एक सच्चा भाग भी बन जायगा। तन्वी, मन्जुलिका, क्या तुम्हारे हृदय में प्रेम रञ्चमात्र भी नहीं है ?

तन्वी—रंगमंच पर तुमने यह बात कही होती तो मैं लाज संकोच के मारे सिकुड़ सी जाती। कनखियों देखती। उल्टी सांसें चलाती। बरोनियों में एकाध आंसू को भी उलझा देती। दर्शक सोचते मैं प्रेम की कसक के मारे मरी जा रही हूँ। परन्तु यह स्थान जंगल है, जंगल, नाटक-शाला नहीं है और ये दूर बैठे हुए दर्शक नहीं हैं जिनके रिझाने की मेरे मन में लालसा हो। श्रीमान् वकुल जी, तुम्हारी चेतना क्या कहीं घास चरने चली गई है ? मेरे मन में प्रेम ! तुम्हारे हृदय के किसी कोने में आशा !!

वकुल—मैंने तुम्हारे हृदय की बात पूछी थी।

तन्वी—भाई वाह ! गुप्तचर के मुँह से क्या ये शब्द शोभा देते हैं ? अभी तक काम तो कुछ कर नहीं पाया और प्रेम सपाटे मारने लगा ! त्रिपुरी की ओर पहले भी घूम चुके हैं और वहां के पास पड़ोस में नृत्य गान और नाट्य भी किए हैं। पर्याप्त समय व्यतीत किया परन्तु इतना ही तो जान सके कि शातकर्णि और काण्वराज शकों के विरुद्ध तैयारियां कर रहे हैं ! अब आया है तुरन्त कुछ काम करने का समय। इन्द्रसेन को मार लिया या अधिकार में कर लिया तो जान लो कि शकों की आधी से भी अधिक विजय हो गई। अभी इन बातों को मन से दूर रक्खो। जो काम सामने है केवल उसको सोचो। चलो। इन्द्रसेन के अनुसन्धान में।

वकुल—मैं अब सचेत हो गया हूँ, तन्वी। क्षमा करना। परन्तु मैं यह कभी मानने को तैयार नहीं कि मानव के भीतर मानव हृदय नहीं हो सकता।

तन्वी—इन्द्रसेन कभी मिला तो दिखलाऊँगी। तुमने उसका निरीक्षण नहीं किया। वह जान पड़ता है ऐसा पुरुष जिसका लक्ष्य भेद सहज प्रतीत नहीं होता। अपना शत्रु न होता तो मैं बिना किसी संशय के कहती—यह है एक ऐसा जिसको नारी अपना कुछ भेंट कर सकती है।

वकुल—गुप्तचर के मुँह से ये शब्द!

तन्वी—(हँसकर) गुप्तचर, गुप्तचर ही को तो सावधान कर रहा है। अब चलो उसी दिशा में जहां इस समय इन्द्रसेन प्रवास में होगा। अपना कार्यक्षेत्र वही है।

वकुल—संभव है।

(वकुल भार—वाहकों को लौटा लेता है वे सब जिस ओर से आए थे उसी ओर प्रस्थान करते हैं)

तीसरा दृश्य

[स्थान-दुग्धकुण्ड ग्राम। समय-दिन। एक वर्तुलाकार बड़ी झील के किनारे गांव बसा हुआ है। गांव बड़ा है। झील के दो पार्श्वों पर ऊँची ऊँची पहाड़ियां हैं। तीसरी दिशा में मैदान ऊँचा होता चला गया है। चौथी ओर झील एक बड़े बांध से टेक दी गई है। ऊपर बीच बीच में शिव और विष्णु के कुछ मन्दिर हैं। सेना का शिविर गांव से अलग कुछ दूरी पर है। एक छोटे से भवन पर ऊँचे लट्ठे के सिरे से हंस-मयूर के चित्रों की अरुण रंग वाली पताका लहरा रही है। हंस-मयूर के ऊपर एक चक्र

अंकित है। उस भवन पर 'हंस-मयूर मन्दिर' लिखा हुआ है। भवन के आगे प्रांगण है। प्रांगण के पार्श्वों से दोनों ओर के कक्षों में जाने के लिए द्वार हैं। इन द्वारों के सामने, ओट के लिए छोटी छोटी दीवारें हैं जो छेद वाली और कहीं कहीं से टूटी फूटी भी हैं, एक ओर प्रांगण में इन्द्रसेन और उसका एक साथी आते हैं। समय दिन—हेमन्तऋतु।]

साथी—आदर्श कुछ कठिनता के साथ जनता के गले उतरता है, परन्तु जो कोई उसको समझ लेता है उसमें दृढ़ता और निर्भीकता बहुत आ जाती है।

इन्द्रसेन—मन्जुली और श्रीकण्ठ के अभिनय का प्रभाव कैसा हो रहा है?

साथी—नाकट का कथानक बहुत उत्तेजनापूर्ण है, जनता आपके वाङ्मय और उन दोनों के नाटक से उद्दीप्त हो गई है। लड़ जाने के लिए व्याकुल है।

इन्द्रसेन—(एक क्षण सोचकर) नाटक का मयूर वाला अंग जनता के पुरुषार्थ को चपल कर रहा है और हंस वाला अंग उस उत्तेजना के ओज को सुरक्षित, घनीभूत और दृढ़ नहीं किए है। मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ। उद्दण्डता को निर्भीकता का नाम नहीं दिया जा सकता और न दुश्शीलता को तथा आतङ्क को वीरता का। हंस और मयूर के गुणों का—विवेक और साहस का, समान समन्वय होना चाहिए।

साथी—वैसे, देव, उन दोनों का खेल है विनोदपूर्ण। उस विनोद के द्वारा जनता उत्साह से ओतप्रोत हो हो जारही है। (आतुर सा होकर) परन्तु आपके वचनों को उसका अधिक श्रेय है।

इन्द्रसेन—(मुस्कराकर) वह परिणाम विष्णु के उस रूप को ग्रहण करने का है। भ्रमपूर्ण और शिथिल आदर्शों ने जनमन को अस्त-

ध्वस्त सा कर दिया है। निर्भ्रम विवेक ही शत्रु का दृढ़ता के साथ सामना करने की शक्ति को संचालित कर सकता है। यह शक्ति प्रत्येक नरनारी की प्राकृति में निहित है; कभी कोई भ्रम इसको शिथिल कर देता है, कोई बिखेर देता है और कोई प्रचण्ड कर देता है। विष्णु की भावना द्वारा इसका व्यापक संगठन आवश्यक है। तभी शक्ति के भांडार का निर्माण होगा। मेरी कामना है कि जनता अपनी सोई हुई, खोई हुई, शक्ति को विष्णु की साधना द्वारा पुनः प्राप्त करे! मन्जुली को भेज दो। हां—श्रीकंठ भी आ सकता है।

साथी—अभी भेजता हूं, देव। (जाता है)

(इन्द्रसेन विचार मग्न टहलने लगता है। एक ओर से तन्वी आती है वह फूलों से केश सजाए हुए है। उसकी वेशभूषा भी आकर्षक है। उसके पीछे पीछे बकुल आता है वह अपनी वास्तविकता को श्री कण्ठ नाम से छिपाए हुए है।)

इन्द्रसेन—श्रीकण्ठ, तुम अभिनय में अतिशयता न लाओ तो तुम्हारा अभिनय सुन्दर हो सकता है। तुम्हारा भावोन्मेष जनमन को उन्मत्त सा कर देता है, परन्तु उद्देश्य उसको संयत सजगता देने का है।

बकुल—देव, मैं कुछ तो करने में समर्थ हुआ। आगे आपके निर्देष के अनुकूल कार्य करूँगा।

(मन्जुलिका के चेहरे पर सलज्ज मुस्कान है)

इन्द्रसेन—अच्छा तुम उधर जा बैठो; तब तक मैं मन्जुली से बात करूँगा।

(बकुल नीचे नीचे देखता हुआ जाता है, परन्तु वह द्वार के सामने छेद वाली भीत के पीछे खड़ा हो जाता है।)

तन्वी—अब कुछ प्रसाद मुझको भी, देव।

इन्द्रसेन—तुमने हंस-मयूर नाटक को इस प्रदेश में कई बार खेला है, पर विवेक और तेज के सामञ्जस्य की जो कहानी तुम्हारे नाटक का आधार है वह कुछ यों ही रही।

तन्वी—यों ही रही देव! आपसे कहा था कि कहानी बना दीजिए, नाटक में उसको हम लोग परिणत कर लेंगे, पर आपने कुछ किया ही नहीं।

इन्द्रसेन—मुझको अवकाश नहीं मिला।

तन्वी—अच्छा देव, हमारा नृत्य-गान कैसा रहा? यहां की जनता को कैसा रुचा होगा?

(सङ्कोच के आवरण में लुभाने का अभिनय करती है।)

इन्द्रसेन—तुम्हारा नृत्य और गायन जो उदयगिरि में देखा था वैसा ही अब भी कलापूर्ण है, परन्तु नाटक की घटना निरी कल्पना थी और कुछ अस्त-व्यस्त, इसलिए लोग नाचने गाने पर रीझकर और कहानी पर खीझकर चले गए। (हँसता है)

तन्वी—(**अप्रतिहत**) वास्तव में देव, नाटक का मूल भाव अभी हम लोगों की समझ में नहीं आया है, इसलिए हम उसको ठीक प्रकार से मूर्तिमन्त नहीं कर सके।

इन्द्रसेन—भाव, मन्जुलिका, संक्षेप में यह है। केवल नीति से, केवल शांति से, केवल दया और अहिंसा से संसार का काम नहीं चल सकता। बड़े गुण होते हुए भी केवल इनके प्रभाव में जन, और जनपद के जनपद, कातर, कायर और निकम्मे हो जाते हैं। आक्रमणकारी उनपर टूटे और वे नष्ट हुए। केवल नीति ऐसे शत्रु के विरोध में काम दे सकती है जो केवल नीति का मानने वाला हो, परन्तु शक सदृश बर्बर और निर्दय शत्रुओं के सन्मुख केवल नीति की शिक्षा सहायता नहीं कर सकती। केवल नीति और अहिंसा का प्रतीक है हंस।

तन्वी—और आपने बतलाया था—

इन्द्रसेन—कई बार सुनो। फिर बतलाता हूँ,— केवल शूरता, हत्याओं और रक्तपात की अखंड लड़ी है, यह केवल पाशविक बल है; इसका प्रतीक है मयूर। संसार और जीवन, इन दोनों के समान मेल से ही, चल सकते हैं। तुम्हारे नाटक में इस भाव की पुष्टि के लिए घटना अच्छी नहीं बनाई गई।

तन्वी—(भोलेपन के साथ) देव, सुनती हूँ शास्त्रों ने उन सब गुणों को दुर्गुण कहा है जिनका प्रतीक मयूर है। इसीलिए कहानी ठीक नही बन पाती।

इन्द्रसेन—मन्जुलिके, तुम सुराष्ट्र की हो। सुन्दर प्यारा सुराष्ट्र बारम्बार शकों के पैरों के नीचे रुँद-रुँद जाता है। सुराष्ट्र केवल हंस के गुणों का पुजारी है। इस बात को ध्यान में रखो तो कहानी ठीक बन जायगी।

तन्वी—देव, मालव क्यों रूठ गए?

इन्द्रसेन—वहां एक ओर कापालिकों की केवल बर्बरता थी और दूसरी ओर प्रेम के उन्माद में चूर गर्दभिल्ल जो इस बात को भूल गया कि वह जनपदों का नायक है, शकों का शाहानुशाह नहीं है, केवल एक जन-नायक है। यौधेयों को देखो। उन्होंने मुल्तान के पास कहरूर में शकों की सम्मिलित शक्ति की धज्जियां उड़ादीं। शक लोग कश्मीर और कपिशा के उत्तर से एकत्र होकर फिर टूट पड़ने की योजना कर रहे हैं, परन्तु हम भी उनको परास्त करके रहेंगे। नलपुर, पद्मावती, और मथुरा के जनपद हमारे अधिकार या प्रभाव में आगए हैं। हम लोगो ने ऐसी योजना बनाई है कि उषवदात को त्रिपुरी के आस पास ही कहीं युद्ध करने के लिये विवश होना पड़े। उस युद्ध में शक ऐसे परास्त होंगे कि भारतवर्ष भर में कहीं भी उनकी शक्ति शेष नहीं रहेगी।

तन्वी—एक शकनायक भूमक नाम का भी सुना गया है। वह बहुत प्रतापी है।

इन्द्रसेन—हां, वह प्रचण्ड दुष्ट कहीं उत्तर की ओर था। जय मन्त्रधारी यौधेयों ने उसको पराजित कर दिया; सुना घायल हो गया है, कदाचित मर गया होगा।

(तन्वी घबरा जाती है। परंतु अपनी चिंता तथा उद्विग्नता को कठोर प्रयास से दबाती है। भाव को छिपाने के लिए सिर नीचा कर लेती है।)

इन्द्रसेन—मंजुलिके, चुप कैसी होगई? क्या बात है?

तन्वी—(नीचा सिर किए हुए) देव,—देव,—मैं आज एक भी··ख··भीख··मांगने आई थी।

इन्द्रसेन—मुझसे! क्या मांगने आई थीं, मन्जुलिके?

तन्वी—(सँभलती हुई) हां देव,—नहीं, कुछ नहीं, देव।

इन्द्रसेन—तुम अधीर क्यों होगई?

तन्वी—(और भी सँभलकर) नहीं, कुछ नहीं। (सलज्ज मुस्कान का प्रयास करती है।)

इन्द्रसेन—तुम्हारी बात क्या भूमक से कुछ सम्बन्ध रखती है।

(आंख गड़ाकर देखता है।)

तन्वी—(दृढ़ स्वर में) नहीं तो देव।

इन्द्रसेन—फिर क्या बात है? कह डालो न।

तन्वी—नाटक और अभिनय कला की ही बात करना चाहती हूँ।

इन्द्रसेन—तुम्हारे मन में कोई और प्रसङ्ग है। झटका सा खागई हो। छिपाओ मत। बोलो।

तन्वी—(फिर विचलित होकर) यौधेयों को जय मन्त्रधारी क्यों कहते हैं?

इन्द्रसेन—इसको सारा देश जानता है-यौधेयों को युद्ध में कभी किसी ने परास्त नहीं कर पाया, इसलिए वे जयमन्त्रधारी कहलाते हैं। परन्तु यौधेय तुम्हारे इस प्रकार विचलित होने के कारण नहीं हो सकते। वास्तविक कारण अभी दूर है। है न मन्जुलिके ? बोलो।

तन्वी—(पुनः स्थिर होने का प्रयास करती हुई) युद्ध में नायक घायल हो जाते हैं—मारे भी जाते हैं ! आप भी जयमन्त्रधारी होने के मार्ग पर हैं ! (सिर नीचा कर लेती है।)

इन्द्रसेन—(हँसकर) अच्छा—आगे ?

तन्वी—(निस्तार का कोई भी मार्ग न पाकर) उदयगिरि से इस जन पद के विकट जंगलों को कूदती फाँदती चली आई। नारी होकर वैसी भीख मांगना अशुभ है, परन्तु समर क्षेत्र के एक चित्र ने विवश करके उस याचना को कण्ठगत कर दिया और मैं विह्वल होगई। अब संकोच ने गले को दबा दिया है। (नीचा सिर किए हुए मुस्कराती है)

इन्द्रसेन—देश और धर्म को हानि पहुंचाने वाले दान को छोड़ कर जो कुछ मांगोगी यथा सामर्थ दूँगा। तुम नहीं जानती तुम्हारी कला से मैंने कितनी प्रेरणा पाई है। उसने मेरे जीवन को चमत्कार और विनोद का अङ्ग बना दिया है। मांगो सुन्दरी मैं दूँगा।

तन्वी—(संयत होकर परन्तु कम्पित स्वर में) जो कुछ मैं मांगूगी उसमे देश को कोई हानि नहीं पहुंचेगी, क्योंकि आर्य, मेरा भी वही देश है जो आपका है। धर्म की गति मैं जानती नहीं। आप पंडित और शूर-दोनों-हैं।

इन्द्रसेन— मन्जुलिके, तुमको हँसते हुए ही देखने का मुझको अभ्यास है, इसलिए खिन्नता को त्याग कर, अपनी मन्जुल मुस्कान में बात करो। आज से तुमको उस मधुरस्मित के कारण मन्जुली कहा करूंगा।

(तन्वी संयत होगई है। नीचा सिर थोड़ा सा ऊंचा करके मुस्कराती है। ग्रीवा अंशतः तिरछी करती है। उसके माथे पर एक रेखा पड़ जाती है। खांसती है, फिर विरुद्ध सांस झटके के साथ फेक कर एक क्षण रुक जाती है।)

तन्वी—साहस नहीं कर पा रही हूँ, देव। मुझको अनुमति दीजिए, जाऊँ। फिर कभी कहूँगी।

(वह गमनोद्यत होती है। इन्द्रसेन आड़े आजाता है।)

इन्द्रसेन—टाल नहीं सकोगी, मन्जुली। दुर्बोध को सुबोध बनाने का यही क्षण है। कह नहीं सकता फिर कब इतना समय मिलेगा। प्रसङ्ग को इस प्रकार अधूरा छोड़ कर नहीं जाने पाओगा।

तन्वी—(निश्चय के स्वर में) देव, मैं कुमारी हूँ। कभी किसी से प्रेम नहीं किया—(यकायक चुप हो जाती है।)

(इन्द्रसेन व्यग्र सा होकर तन जाता है और फिर झुक जाता है।)

इन्द्रसेन—(मुस्कराता हुआ) कहो, मन्जुली कहो, प्रस्तावना तो मनोहर है।

तन्वी—(गर्दन नीची किए हुए) देव, आपके प्रेम की भीख मांगती हूँ।

(वह हिल जाती है)

इन्द्रसेन—मन्जुली, तुम भीख मांग रही हो या वरदान दे रही हो!

तन्वी—देव, अब मुझको जाने दीजिए।

इन्द्रसेन—देवी, मैंने जब उस रात उदयगिरि की गुफा में तुमको देखा था तभी मेरे हृदय में मन्जुलता समा गई थी। परन्तु मुझको मोह कभी नहीं हुआ। मैं तुम्हें प्रेम करता हूं यह बात मैं क्यों छिपाऊँ? मैं

तुम्हारे साथ विवाह करके समानपद दूँगा। मन्जुली मस्तक ऊँचा करो। मुझको अपने सुन्दर नेत्रों और मधुर स्मितों को देखने दो। वे तुम्हारी निधि हैं और मेरी भी। (मन्जुली नीचा सिर किए हुए ही मुस्कराती है) मन्जुली, एक बात अवश्य है। जब तक देश स्वतन्त्र नहीं हुआ, हमारा प्रणय विवाह की सीमा पर नहीं पहुंच सकेगा।

तन्वी—दान दे चुके देव, मैं और क्या कहूं ?

इन्द्रसेन—(हँसकर, उमंग के साथ) मन्जुल अप्सरे, दान दो प्रकार के होते हैं—एक सत्वर, दूसरा स्थगित। इस दान को क्या कहूँ ?

तन्वी—(हँसकर) अधः पर ! त्रिशङ्कु !!

इन्द्रसेन—(हँसते हुए) आओ मन्जुली, आओ देवी। मेरी बाहें तुम्हारा आवाहन कर रही हैं।

(तन्वी के मुख पर लाली दौड़ दौड़ जा रही है)

तन्वी—यह भी अधः पर अथवा स्थगित रहेगा, देव, 'क्योंकि यह प्रणय की सीमा के बाहर है, यद्यपि विवाह की सीमा के भीतर।'

(जाने के लिए उद्यत होती है)

इन्द्रसेन—(हँसता हुआ संयत स्वर में) ठीक कहती हो मंजुली, ठीक कहती हो। ऐसा ही होगा। विश्वास रक्खो। थोड़ा सा ठहरो।

(तन्वी आंख उठाकर इन्द्रसेन को देखती है मानो उनका सम्पूर्ण चित्र अपनी पलकों के भीतर भर लेना चाहती हो। आंख नीची कर लेती है।)

तन्वी—अब मैं निवास स्थान को जाऊं ? एक निवेदन और है। वह देश और धर्म के किसी के भी प्रतिकूल नहीं है।

(मन्जुली हँसती है उसके मोती जैसे दांत चमक जाते हैं)

इन्द्रसेन—(हँसकर) कहो, मन्जुली प्रेम की साकार प्रतिमा, संकोच मत करो।

तन्वी—आगे मैं जनता में नृत्यगान नहीं करूंगी। आपके मनो-रञ्जन के लिए आपके ही सामने कर सकती हूँ, आपके निकट रह कर।

इन्द्रसेन –(कुछ सोचकर) जनता कुछ अपवाद करेगी। (फिर दृढ़ता के साथ) परन्तु इसमें जनता का क्या? यह तो मेरे निजी जीवन से सम्बन्ध रखने वाला प्रसङ्ग है। देखा जायगा। जैसा तुम चाहती हो वैसा ही होगा।

(नमस्कार करके तन्वी बाहर के कक्ष में जाती है। इन्द्रसेन घर के दूसरे भीतरी कक्ष में चला जाता है। वकुल पसीने में डूबा सा प्रांगण में आता है उसका चेहरा पीला सा पड़ गया है)

तन्वी – चलो श्रीकण्ठ, घर चलें। क्या कुछ अस्वस्थ हो?

वकुल—नहीं मन्जुल—जुलिका—ऐसा ही कुछ। अच्छा, चलो। बांध के किसी वृक्ष के नीचे बैठेंगे। वहां खुली वायु मिलेगी।

(तन्वी उसकी व्यस्तता को देखकर भी मुस्कराती रहती है, परन्तु वकुल उस मुस्कराहट को नहीं देख पाता। दोनों भवन से बाहर जाते हैं।)

चौथा दृश्य

[स्थान—दुग्धकुप्य ग्राम के पास का पहाड़ी जंगल। समय सन्ध्याके पूर्व। तन्वी और वकुल आते हैं।]

तन्वी—यहां कितने मन्दिर और मूर्तियां हैं!

वकुल – इनको खंडित करने के लिए अभी शक और हूण नहीं आ पाए हैं।

तन्वी—(अनसुनी सी करके) अब स्वस्थ हो? क्या हो गया था तुमको?

वकुल—मैं स्वस्थ और संयत हूँ। क्या मैं पूछ सकता हूं कि मानव के हृदय में मानव होता है ?

तन्वी—तुम भूलते हो। (व्यङ्ग के स्वर में) तुमने एक बार कहा था मानव के भीतर मानव हृदय होता है।

वकुल—यही सही। आज मैंने अपने कानों जो कुछ सुना है क्या वह सब का सब अभिनय ही था ?

तन्वी—तुम क्या समझे ?

वकुल—यही कि मानव के हृदय के भीतर का मानव बोला।

तन्वी—और क्या पत्थर के हृदय के भीतर का पत्थर बोलता ?

वकुल—(आंखों में आंसू आ जाते हैं) क्षमा करो देवी, अब कुछ नहीं कहूँगा।

तन्वी—देखो वकुल, अनमने मत होओ। मूर्खता मत करो। सोचो समझो हम लोग किस परस्थिति में हैं। पिताजी के आहत होने का समाचार सुनकर मैं विचलित हो गई। और किसी प्रकार से निर्वाह होता हुआ न देखकर मैंने प्रेम की बात कही। प्रकट होजाय कि हम लोग उषवदात के गुप्तचर हैं तो एक क्षण में मार डाले जायंगे। तुमको मेरे अभिनय पर प्रसन्न होना चाहिए न कि खिन्न।

वकुल—(कुछ खिल कर) मुझको सान्त्वना मिली, परन्तु उस अभिनय की दो एक बातें समझ में नहीं आईं, इसलिए पूछना चाहता हूं।

तन्वी—पूछो श्रीकंठ।

वकुल—तुम्हारे चेहरे पर लाली क्यों दौड़ दौड़ जाती थी ?

तन्वी—तुम देख रहे थे क्या ? अस्तु, चेहरे पर लाली दौड़ा ले आना बड़े सफल अभिनय का अंग है। और पूछो।

वकुल—आलिंगन क्यों नहीं दिया ? इससे तो इन्द्रसेन का विश्वास और भी पक्का होजाता ?

तन्वी—आलिंगन क्यों नहीं दिया, फिर पूछते, प्रणय में एक पग और आगे क्यों नहीं बढ़ीं ? तुम भी क्या मूर्ख हो ! इससे तो मैंने अपने छल की सचाई को और भी पुष्ट किया, बुद्धि के ठेकेदार ।

वकुल—अच्छा, अच्छा । चलते समय इन्द्रसेन को बड़ी बड़ी आखों क्यों देखा ?

तन्वी—क्योंकि वे महान हैं, जीवन में ऐसा पुरुष कभी नहीं देखा । मैं उनको प्राणपण से चाहती हूं । बस ।

वकुल—(हंस कर और नीचे पड़े हुए घास के तिनकों को उठा उठाकर तोड़ते हुए) नहीं मञ्जुलिका, मैं ऐसा नहीं समझता । वास्तव में वह सब अभिनय था, परन्तु न जाने क्यों उस बातचीत और स्थिति के सम्पूर्ण चित्र की एक साथ ही कल्पना करते ही मन झंझट में पड़ जाता है और शंकाएं खड़ी होजाती हैं । यदि वास्तव में तुम प्रेम के जाल में फंस गईं तो हमारा कार्य पूर्णतया धूल में मिल जायगा । एक समाधान अवश्य मिलता है । तुम प्रेम करने में असमर्थ हो । भगवान ने तुमको प्रेम करने के लिए उत्पन्न ही नहीं किया है । इसलिए भय नहीं लगता । अब शीघ्र ही अवसर पाकर इन्द्रसेन का वध शस्त्र या विष द्वारा करके यहां से चल देना चाहिए । (तन्वी की भोंहें सिमट उठती हैं । वकुल यह भाव नहीं देख पाता ।)

तन्वी—(संयत होकर) जो कुछ करेंगे सावधानी के साथ करेंगे । मैंने इन्द्रसेन के साथ प्रणय इसीलिए किया है । स्मरण है मैं महाक्षत्रप के सामने कुछ प्रण करके चली थी ! मैं ही उस प्रण को कृतकार्य करूंगी । मैं जो कुछ कहूँ केवल उतनी ही सहायता करते रहना ।

वकुल—मैं इन्द्रसेन को किसी प्रकार भी नहीं छोड़ूँगा।

तन्वी—चलो अब घर चलें।

वकुल—चलो। आगे की योजना पर वहीं सोच विचार करेंगे।

तन्वी—श्रीकण्ठ, इन्द्रसेन सचमुच महान है।

(प्रस्थान)

चौथा अंक

पहला दृश्य

[स्थान–त्रिपुरी के निकट नर्मदा का कांठा। जंगल पहाड़ और घने वृक्षों के बीच में समभूमि। उस समभूमि में इन्द्रसेन, रामचन्द्र नाग तथा आन्ध्रों और काण्वों की सम्मिलित सेनाओं की छावनी अनेक निवेशों में। एक बड़े निवेश पर हंस–मयूर की छोटी छोटी पताकाएं हैं। बड़े निवेश के एक भाग में रामचन्द्र नाग, दूसरे भाग में इन्द्रसेन और तीसरे में वकुल तथा तन्वी हैं। इस निवेश के सब भागों के द्वार वृत्ताकार में एक ही ओर हैं। छावनी में व्यवस्था है। निवेश के द्वारों पर पट नहीं पड़े हैं। समय संध्या के पूर्व। ऋतु ग्रीष्म।]

(रामचन्द्र नाग और इन्द्रसेन निवेश के बाहर आते हैं। वकुल अपने द्वार की ओट में भीतर खड़ा है।)

इन्द्रसेन—आर्य पुरानी प्रथाओं और रूढ़ियों के भ्रम को सत्य का रूप दे देने से वे निर्बल नहीं पड़तीं प्रत्युत उनको सजीव बने रहने का

हठ और हानि पहुंचाने का बल और भी अधिक प्राप्त होजाता है। इस वन में बड़े बड़े विषधर सर्प हैं, उनके मारे जाने का निषेध नहीं करना चाहिए था।

रामचन्द्र—सर्प, रक्षा और आक्रमण का प्रतीक है। हमारे यहां उसकी पूजा रूढ़ हो गई है। अतएव निषेध कर दिया।

इन्द्रसेन—इसको खंडित करना पड़ेगा।

रामचन्द्र—देश में व्यवस्था स्थापित होने के उपरान्त। वैसे भी हमारी सेना में बौद्ध और जैन विचारों के कुछ लोग हैं। वे कट्टर शक-विपक्षी हैं। उनका भी ध्यान रखना पड़ा।

इन्द्रसेन—शकों को पराजित करने के उपरान्त बहुत काम करना पड़ेगा। हिन्सा की भ्रमपूर्ण धारणाओं का निवारण दृढ़ता के साथ करन होगा। जनता का एक बड़ा अंश कपोतवृती हो गया है। उसका उबारना प्रथम कर्तव्य होगा।

रामचन्द्र—ग्रामों का पञ्चायती संगठन पहले, क्योंकि शकों ने गण-तन्त्र की परम्पराओं का उन्मूलन कर डाला है।

(सुनन्दा का एक सैनिक के साथ प्रवेश वह हीन क्षीण सी दिखती है।)

सैनिक—देव, ये लोग आपसे कुछ कहना चाहते हैं। नाम नहीं बतलाया इसलिए मैं साथ ले आया।

इन्द्रसेन—**(सुनन्दा को निकट से देखकर)** ऐं! क्या मैं पहिचानने में भूल कर रहा हूं? सैनिक तुम अपने काम पर जाओ।

(सैनिक का प्रस्थान)

सुनन्दा—**(क्षीण स्वर में)** आर्य ने पहिचानने में भूल नहीं की।

इन्द्रसेन—देवी, मैं आपको देखकर दुखी हुआ। आप कष्ट में जान पड़ती हैं। देवी सुनन्दा, आप मेरी अतिथि हुईं।

सुनन्दा—अनुग्रहीत हुई देव।

इन्द्रसेन—साहस नहीं होता देवी, पर क्या मैं पूछ सकता हूं राजन्य कहां हैं?

(सुनन्दा की आंखों में आंसू आजाते हैं।)

सुनन्दा—**(सूखे रूखे स्वर में)** वे यहीं आरहे थे देव। मार्ग में उनको एक सिंह ने—। **(सिसकने लगती है।)**

इन्द्रसेन—ओह !!! देवी, मैं इस समाचार को सुनकर बहुत सन्तप्त होरहा हूं। कब हुई यह दुर्घटना?

सुनन्दा—आज एक मास हो गया है। शकों की सेना उमड़ी चली आरही है। उससे किनारा काटने के लिए घोर जंगल में होकर चलना पड़ा। उनको हम लोगों के बीच में से सिंह उठा लेगया। हाय! मैं न मरी !!

इन्द्रसेन—शकों की सेना उमड़ी चली आरही है! हुँ। वे लोग जन धन का विनाश करते चले आरहे होंगे! हुं। देवी, मेरे लिए क्या आज्ञा है?

सुनन्दा—मेरे भाई कालकाचार्य को आप जानते होंगे?

इन्द्रसेन—**(सांस छोड़कर)** जानता हूँ देवी। कौन नहीं जानता उनको? **(नीचा सिर करके)** मेरे लिए आज्ञा देवी?

सुनन्दा—**(कांपते हुए स्वर में)** मुझको उनके पास भेज दीजिए। मेरे लिए वे व्यग्र होंगे।

इन्द्रसेन—**(सिर को थोड़ा ऊँचा करके)** वे तो शकों की इसी उमड़ती हुई सेना के साथ होंगे?

सुनन्दा—**(दृढ़ स्वर में)** नहीं हैं, आर्य। मुझको समाचार मिला है, वे कहीं सुराष्ट्र में हैं।

इन्द्रसेन—देवी, इस युद्ध के समाप्त होते ही आज्ञा का पालन करूँगा। तब तक आप शिविर में विश्राम करें। और कोई आज्ञा?

सुनन्दा—मैं उपकृत हुई आर्य। कहां जाऊँ?

इन्द्रसेन—इस सामने वाले निवेश में देवी। वहां विश्राम की सब सामग्री मिल जायगी।

(सुनन्दा—अङ्गरक्षक के साथ निवेश में जाती है। अङ्गरक्षक उसको पहुँचाकर लौट आता है, और चला जाता है। इन्द्रसेन का भी प्रस्थान। एक दूसरे स्थान से वकुल और तन्वी धीरे धीरे बात करते हुए आते हैं। वकुल सैनिक वेश में, सशस्त्र है, तन्वी गरमी के कारण कंचुकी नहीं पहिने है। केवल साड़ी पहिने है।

वकुल—अब समय आगया है मन्जुली।

तन्वी—सो तो मैं भी देख रही हूं।

वकुल—महाक्षत्रप की सेना आ रही है। यातो निशा में ही युद्ध होगा या प्रातः के पूर्व ही निद्रा का राज्य होने पर, कपड़े की इस भीत के नीचे से सरक कर उस भाग में जाऊँगा और इन्द्रसेन तथा रामचन्द्र नाग का अन्त करूँगा। उनके मारे जाने का समाचार फैलते ही आर्य सेना हड़बड़ा जायगी और अपनी सेना की विजय होगी। मैं तुमको लेकर महाक्षत्रप की सेना में जा मिलूँगा। वन-पर्वत निकट ही लगे हैं। मैंने अपने पास एक विष-हीन सर्प छिपा रक्खा है। यदि विफल हुआ तो उसको छुटका दूंगा और चिल्ला उठूँगा कि सांप को पकड़ने के लिए घुस आया, क्योंकि सर्पों के मारने का प्रतिषेध है।

(वध की बात सुनते ही तन्वी की आंख की एक कोर कुछ संकुचित हो जाती है।)

तन्वी—यदि हमारी सेना आज या कल भी न आई तो आर्य सेना का नायकत्व कोई न कोई तो करेगा ही। पहले यह निश्चय करलो कि

शक-सेना समीप आगई है। यदि नहीं आगई है तो किसी और अवसर के लिए इस योजना को टाल दो। मुझको विचार करलेने दो, क्योंकि तुमने पहले कभी नहीं बतलाया। अभी अकस्मात कहा।

वकुल—मन में कुछ तो मेरे पहले से ही थी, पर इसी रात काम कर डालने के लिए मैं एक विशेष कारणवश उद्यत हुआ हूं।

तन्वी—वह विशेष कारण क्या है श्रीकंठ?

वकुल—यदि इनको मार मूर कर हम यहां से नहीं भागते हैं तो कल हम दोनों मार डाले जायंगे।

तन्वी—(**बिना किसी भय के**) क्यों?

वकुल—अभी अभी सुनन्दा यहां आई है। (**उसका नाम सुनकर तन्वी चोंक पड़ती है।**) बिलकुल थकी मांदी और अस्त-व्यस्त अवस्था में। वह यहां अतिथि है। जब पूरी नींद लेकर प्रातःकाल उठेगी तब तक श्रीकंठ वकुल हो जायगा और मन्जुलिका तन्वी, क्योंकि सुनन्दा के साथ मैंने कालकाचार्य के विद्यापीठ में पढ़ा है। आगया समझमें देवी?

तन्वी—समझ गई।

वकुल—अब क्या कहती हो?

तन्वी—(**एक क्षण सोचकर**) यह कुछ मत करो। तुम्हारी योजना में पागलपन अधिक है, विवेक कम। तुम इसी समय छावनी के बाहर चले जाओ। इस प्रकार बच जाओगे। मैं अकेली रहकर अपने ढंग से कुछ करूँगी। तुम शक सेना में जामिलो।

वकुल—मेरा निश्चय अटल है। मैं आज उन दोनों को मारूँगा। (**तन्वी कुछ सोचती है**) मन्जुली तुम कितनी सुन्दर हो और आज मैं कितना मुग्ध हूँ यह मैं ही जानता हूँ। मैं जानता हूं कदाचित् मैं इस प्रयत्न में मारा जाऊँ। परन्तु मारकर मरूँगा। मरने से पहले क्या मुझको अपने प्रेम का आशीर्वाद न दोगी मेरी मन्जुली? (**तन्वी के होट सट**

जाते हैं। कुछ नहीं बोलती है। अंधेरा बढ़ता चला जाता है। नर्मदा के जल-प्रपात का शब्द सुनाई पड़ता है।)

तन्वी—आज तुमको क्या हो गया है ? आपे से बाहर हुए जा रहे हो ! जियोगे और जीवन में बहुत कुछ पाओगे। अभी तुमने संसार का देखा ही क्या है ?

वकुल—परन्तु तुम उस आशीर्वाद को न दोगी ?

तन्वी—मैं तुम्हें स्नेह करती हूँ। इसीलिए अनुरोध करती हूँ कि चुपचाप चले जाओ।

वकुल—स्नेह और प्रेम में अन्तर है तन—वी—मन्जुली एक बार तुमको हृदय से लगा लेता और मर जाता तो अन्तिम साध मिट जाती।

तन्वी—क्या बकते हो ! श्रीकण्ठ ! विवेक से काम लो। मैं तुम्हारा नियंत्रण करूंगी।

वकुल—मैं इस नियन्त्रण का अर्थ जानता हूं मन्जुली। बहुत दिनों से जानता हूँ।

तन्वी—क्या जानते हो, मुझको नहीं पूछना है। में केवल यह प्रार्थना करती हूं कि शान्त रहो और उस कार्य को मत करो।

वकुल—क्योंकि, क्योंकि—अस्तु। मुझको निश्चय हो गया है कि तुम जान बूझ कर इन्द्रसेन के मारे जाने में बाधा डाल रही हो। क्योंकि मैं तुमको प्यारा नहीं हूँ, वह तुमको प्यारा है। तुम वैष्णवी और हंसमयूरी होगई हो।

तन्वी—चुप, चुप वकुल। भीतें कपड़े की हैं, पत्थर, ईंट चूने की नहीं। में सोती हूँ। तुमको जो अच्छा लगे करो। अब मैं कोई बाधा नहीं डालूँगी।

(तन्वी अपने निवेश में जा लेटती है। अंधेरा बढ़ता जाता है। छावनी में पहरे वालों के अतिरिक्त धीरे धीरे सब निद्रावश

होते हैं। निवेश के पास वाले भाग में इन्द्रसेन इत्यादि सो जाते हैं। उसी निवेश के एक छोटे से कक्ष में सुनन्दा है। उसको नींद नहीं आ रही है। तन्वी को सोया हुआ समझ कर बकुल उठता है और उसके पास जाता है।)

बकुल—(स्वगत) जगत की अनुपम सुन्दरी तन्वी, इस जन्म में तुम्हारा प्यार न पा सका! अस्तु। (उसके अधखुले माथे के निकट अपने होठ ले जाता है) अब मैं अपना काम करूँ। (कनात के पास जाकर कान लगाता है फिर लौटता है) इसको जगा कर एक बार हृदय से लगा लूँ! नहीं, उतना ही बहुत है। अच्छा एकबार और।

(अपने होठ उसके माथे के निकट ले जाता है और जाता है। वह कनात के नीचे के भाग में होकर सरकता है जहां वह ढीला है। तन्वी तुरंत बिछौने में से उठती है। अपनी साड़ी का कछोटा कसती है। उसकी दोनों बाहें उघर जाती हैं। वह बिलकुल चुपचाप बकुल के पीछे पीछे जाती है। कनात की ढील में होकर वह आधी से अधिक सरक जाती है और पेट के बल उकड़ूं पड़ी रहती है बकुल एक हाथ में सांप को पकड़े है और दूसरे में नङ्गा खड्ग लिए देख रहा है कि इन्द्रसेन किस स्थान पर सो रहा है। इन्द्रसेन का पर्यंक कनात के उस भाग के पास ही है जहां होकर वह सरक आया था। परन्तु पहिचान न सकने के कारण आगे बढ़ जाता है और फिर लौट पड़ता है। निवेश में कुछ बत्तियों का मंद प्रकाश है। बकुल सांप को छुटका कर इन्द्रसेन के सिर पर भरपूर वार करता है। तन्वी उसी समय उछल कर उसके कंधे को पकड़ कर पीछे खींचती है। इन्द्रसेन का सिर तो बच जाता है, परन्तु वार कंधे पर खिच जाता है और वह आहत हो जाता है। उसके मुंह से ओह! निकलता है शब्द में संकट को अवगत

कर सुनन्दा दौड़ती है, रामचंद्र नाग जाग उठता है और दण्ड-पाशिक दण्डदीप लिए हुए निवेशके भीतर घुस आते हैं। साप को देख कर दण्डपाशिक अकचका जाते हैं, सुनन्दा वकुल को पहिचान कर चीत्कार करके बैठ जाती है भागने की सुविधा समझ कर वकुल छलांग मार कर निकल जाने का प्रयत्न करता है, परन्तु तन्वी उसको एक हाथ से लिपट कर छेड़े रहती है और दूसरे हाथ से उसकी तलवार छीनने का प्रयत्न करती है। रामचंद्र अपने सिरहाने से खड्ग खींच कर वकुल पर झपटता है। दंड-पाशिक दौड़ पड़ते हैं और वकुल को नङ्गी तलवारों के घेरे में कर लेते हैं। इन्द्रसेन अचेत नहीं है। निवेश में और भी दण्ड दीप आ जाते हैं। वकुल अपना खड्ग फेंक देता है।)

सुनन्दा—वकुल ! वकुल !! यह क्या !!!

रामचंद्र—उषवदात का गुप्तचर वकुल !

सुनन्दा—उषवदात का गुप्त चर !!

इन्द्रसेन—(तकिए से टिक कर) ओह ! यह श्रीकंठ वकुल है ! मन्जुली तुम उसको छोड़ दो, अब वह नहीं भाग सकता। यहाँ आकर बैठ जाओ। तुम हांफ रही हो पसीने में भीग गई हो ! (तन्वी उसके पास जाकर चिंता के साथ घाव की परीक्षा करती है) घाव बहुत साधारण है देवी। अभी पट्टी बंधी जाती है। (एक सैनिक पट्टी लाता है।)

तन्वी—(व्यग्र और टूटे स्वर में) देव, उसका खड्ग कहीं विषाक्त न हो। वैद्य से विष के प्रतिकार की औषधि मंगवाइये। शीघ्र, देव, शीघ्र।

वकुल—(फटे स्वर में) तन्वी ! जाति द्रोहिणी अभागिन !!

रामचन्द्र—तन्वी कौन ?

इन्द्रसेन—तन्वी ! कौन तन्वी ?

(इन्द्रसेन की आंख तन्वी के उस उघड़े हुए बाहु पर जाती है जहां खरोष्ठीलिपि में लिखा है 'महाक्षत्रप भूमक की पुत्री तन्वी' इन्द्रसेन खरोष्ठीलिपि जानता है। पढ़ लेता है और पढ़कर चुप हो जाता है।)

वकुल—मैं बतलाता हूं कौन तन्वी। शकों की घातक, नाचने और गाने वाली निर्मम शिला-तन्वी।

(तन्वी और सुनन्दा एक दूसरे का एकाध क्षण निरीक्षण करती हैं।)

वकुल—कैसी दो नारियां यहां एकत्र हुई हैं ! सुनन्दा और तन्वी !! एक ने उत्तमभद्रों का विनाश करवाया ! दूसरी ने शकों का !!

इन्द्रसेन—सावधान नीच ! आगे मुंह मत खोलना !!

रामचन्द्र—सावधान ! वकुल !! (खड्ग उबारता है)

इन्द्रसेन—आर्य क्या करते हो ?

सुनन्दा—मैं इसके प्राणों की भिक्षा मांगती हूं।

(तन्वी सुनन्दा के पास जाकर बैठने के लिए मुड़ती है इन्द्रसेन दूसरे बाहु के गुदने वाले लेख को भी पढ़ लेता है—,आचार्य कालक की शिष्या तन्वी। वैद्य आता है और औषधोपचार पट्टी इत्यादि के उपरांत चला जाता है। उसी समय शकों की सेना के आने का शब्द होता है। वे दण्डदीप जलाए हुए हैं और घोड़ों पर सवार। तुरंत युद्ध हो उठता है। आकस्मिक आक्रमण के कारण आर्यसेना पहले भागती है, फिर शीघ्र संभल कर लड़ती है इन्द्रसेन खड़ा हो जाता है।)

इन्द्रसेन—वकुल को कठोर पहरे में रक्खो। लेजाओ। वकुल को

सैनिक बांध कर लेजाते हैं।) नागदेव, संभालिए सेना को मैं आता हूं।

(कवच इत्यादि पहिन कर रामचंद्र नाग का प्रस्थान। सुनन्दा अपने डेरे में जाती है। इन्द्रसेन कवच पहिनने का प्रयास करता है।)

तन्वी—देव, आप यह क्या कर रहे हैं? शरीर से इतना रक्त निकल चुका है! कन्धे में घाव है आप लड़ने जा रहे हैं!! नहीं जा सकेंगे।

(इन्द्रसेन पलंग पर बैठ जाता है)

इन्द्रसेन—राजकुमारी—

तन्वी—राजकुमारी कौन, देव?

इन्द्रसेन—राजकुमारी तन्वी और हमलोगों की मन्जुलिका; महा-क्षत्रप भूमक की पुत्री, आचार्य कालक की शिष्या। मैं खरोष्ठी लिख पढ़ सकता हूँ और संस्कृत तो सहज ही है।

तन्वी—**(मुस्कराकर)** इससे मेरे हठ को बाधा नहीं पहुंचती।

इन्द्रसेन—**(खड़ा होकर)** राजकुमारी मन्जुली, मुझको जाने दो हंसमयूर के प्रतिनिधि को हंसमयूर के ध्वज के नीचे जाने दो। क्या तुम चाहती हो कि आर्य हार जांय? आर्य संस्कृति का निधन हो जाय? रणक्षेत्र में मेरे पहुंच जाने से आर्य सेना को दुगुना बल मिल जायगा और राजारामचन्द्र को चौगुना उत्साह। हमारी सेना में कदाचित् कोई यह झूठा समाचार फैला दे कि मेरा बध होगया है तो आर्य सेना की उमंगें शिथिल पड़ जायंगी। आओ कवच पहिनने में सहायता करो देवी।

(तन्वी कवच इत्यादि पहिनने में सहायता करती है। उसकी आंखों में आंसू आ जाते हैं।)

इन्द्रसेन—आज एक भीख मैं तुमसे मांगता हूं देवी।

तन्वी—क्या है देव ?

इन्द्रसेन—युद्ध से मेरे लौटने तक सुनन्दा की रक्षा करोगी ?

तन्वी – वचन देती हूँ आर्य।

(इन्द्रसेन बाहर जाता है। तुरंत 'हंस मयूर की जय' का तुमुल नाद होता है। तन्वी सुनन्दा वाले डेरे में जाती है। घमासान युद्ध रात भर होता है। प्रातःकाल होने के समय पुरन्दर कापालिकों की सेना लिए हुए आ जाता है। शकों के पैर पहले ही उखड़ चुके थे, अब वे बुरी तरह घेरे जाकर मारे जाते हैं। बहुत कम शक बचते हैं। उषवदात घायल होकर गिरता है और वन्दी कर लिया जाता है। युद्ध स्थगित होता है। इन्द्रसेन, रामचन्द्रनाग, और पुरन्दर 'हंस मयूर की जय' मालवगण, आंध्रों, नाग और काण्वों की जय' कहते हुए बड़े तम्बू के सामने आते हैं सुनन्दा तम्बू के भीतर थाल में धान, फूल और आरती सजाए खड़ी है। उसके पीछे तन्वी उछल उछल, झांक झांककर देखती है। वह बहुत उदास है। इन्द्रसेन को और भी घायल देखकर वह करुणा से भर जाता है।

तन्वी—(सुनन्दा से) दीदी रानी, घायलों को खुली वायु में नहीं रहना चाहिये।

सुनन्दा —और तो कोई घायल नहीं दिखता—हां नलपुरगण नायक कुछ और घाव खा गए हैं। (दौवारिक को संकेत से बुलाकर) वैद्य को लाओ।

(दौवारिक जाता है)

तन्वी—मैं भीतर चली जाऊंगी। (भीतर चली जाती है, वे

तीनों सुनन्दा के समीप आते हैं। सुनन्दा आरती का थाल लिए हुए पीछे हठ जाती है।)

पुरन्दर—देवी, हम लोगों ने आरती के दर्शन कर लिए, बस हो गया। चाहो तो इसको छिटक दो वह शुभ है।

रामचन्द्र नाग—देव इन्द्रसेन की आरती उतारी जायगी।

तन्वी—(आड़ में सुनन्दा से) आरती नहीं, औषधोपचार दीदी रानी। (उसी समय वैद्य आकर इन्द्रसेन का उपचार करता है।)

इन्द्रसेन—मेरी आरती ! मैं तो देश का एक छोटा सा सेवक हूँ। आरती उतारी जाय तो हंस-मयूर की, आदर दिया जाय तो उस देवी को जिसने मेरे प्राण बचाए। पुरुषों की आरती नहीं उतारी जानी चाहिए।

(हंस-मयूर पताका सामने लाया जाता है उसकी आरती उतारी जाती है। तन्वी आजाती है। तन्वी और सुनन्दा सबके ऊपर धान छिटकती हैं। और फूल बरसाती हैं—इन्द्रसेन पर तन्वी विशेषकर। इसके उपरांत कुछ घायल शक नायक निवेश के सामने लाए जाते हैं। वे पहिचान में नहीं आते। उषवदात को पहिचान कर तन्वी सुनन्दा को संकेत करती है और इन्द्रसेन के पीछे खड़ी हो जाती है।)

तन्वी—(सुनन्दा से) महाक्षत्रप उषवदात यह है।

(इन्द्रसेन सुन लेता है।)

इन्द्रसेन—उषवदात, आप पहिचान लिए गए हैं। अपने घोर पापों और अपराधों का क्या उत्तर है आपके पास ?

उषवदात—कौन कहता है मैं उषवदात हूँ ? मैं उषवदात नहीं हूं।

तन्वी—(सामने आकर) मैं कहती हूँ तुम उषवदात हो। मैं कहती हूँ।

उषवदात—कौन, तन्वी ! अभागिन राजकुमारी, क्या वैष्णव होगई है ?

तन्वी—कुछ भी होगई, परन्तु मैंने पाप नहीं किए।

(पीछे हट जाती है।)

पुरन्दर—तुरन्त इन शकों के टुकड़े करके कुत्तों को डाल दो। ओह, उषवदात यह है !

रामचन्द्र—हां। अवश्य।

इन्द्रसेन—नहीं, नायको। हम हंस-मयूर ध्वज को बंदियों के रक्त से कलुषित नहीं कर सकते। आर्य-धर्म के प्रतिकूल है। हमारी संस्कृति नतोन्मुक्त हो जायगी।

पुरन्दर—तब इनको उज्जैन ले चलकर आजन्म कारावास दिया जाय।

इन्द्रसेन—यह भी नहीं होगा आचार्य। उज्जैन में जो क्रूर कर्म इन लोगों ने किए हैं उससे उज्जैन निवासी बहुत क्रुद्ध हैं। वे इनको हमारे हाथ से छीन कर मार डालेंगे। औषधोपचार करने के बाद इनको विदिशा में बन्द रखा जाय।

उषवदात—ओह ! तन्वी, तन्वी, भूमक का नाम लजाने वाली शक कन्या ! शक द्रोहिणी !!

तन्वी—(फिर सामने आकर) हां शक कन्या। और अब आर्य नारी।

उषवदात—अभागिन !

इन्द्रसेन—लेजाओ इन लोगों को।

(मरहम-पट्टी के लिए वे लोग हटा दिए जाते हैं। तन्वी अपने निवेश में चली जाती है। फिर सबका प्रस्थान।)

छटवां दृश्य

(स्थान—भृगुघाट के निकट का जङ्गल। इन्द्रसेन का प्रवेश। वह पट्टियां बांधे है। पीछे से तन्वी आती है। इसके हाथ में पुष्पमाला है।)

तन्वी—देव, इसको गले में पहिनाने दीजिए। (तन्वी की आंखों में आंसू आ जाते हैं। वह माला पहिनाती है।)

इन्द्रसेन—मन्जुली, बहुत उदास हो। चिन्तित मत होओ। मैं स्वस्थ हो जाऊँगा। (वह बिलख-बिलख कर रोती है) क्या बात है मन्जुली ?

तन्वी—(कुछ संयत होकर) देव, मैं अब स्वाधीन नहीं हूं।

इन्द्रसेन—तुम स्वाधीन हो देवी। जहां चाहो वहां अत्यन्त आदर के साथ भेजी जा सकती हो। आर्य जनपद तुम्हारे अनुग्रह को कभी नहीं भूलेंगे।

(मंजुली तिनक जाती है। आंसू पोछती है।)

तन्वी—(रूखे स्वर में) आर्य, आप बहुत निष्ठुर और कठोर हैं। विन्ध्याचल सरीखे निर्मम।

इन्द्रसेन—(मुस्कराकर) मैं समझा नहीं।

तन्वी—(यकायक हँसकर और फिर तुरन्त गंभीर होकर) आर्य सोचते होंगे मै केवल एक शक नर्तकी और गायिका हूँ।

इन्द्रसेन—अपना और मेरा अपमान मत करो, मन्जुली। मुझको बतलाओ तुम खिन्न क्यों हो ?

तन्वी—शकों के नाश पर मैं फूल चढ़ा रही हूँ देव, और क्या कहूँ ?

इन्द्रसेन—हुं। तुम उस नाश को बचा सकती थीं, देवी। किसी आर्य का विवेक तुम्हें दोषी ठहराने का साहस न करता।

तन्वी—अर्थात मैं अपना सर्वनाश कर लेती, क्यों निष्ठुर आर्य !

इन्द्रसेन – (हँसकर) आओ मन्जुली, तुम्हारे स्पर्श से मेरे घाव स्वस्थ हो जायंगे। (तन्वी इन्द्रसेन के कंधे पर सिर टेक देती है।) बस ! केवल इतना स्पर्श !

तन्वी—(मुस्कराकर) दान दो प्रकार के होते हैं ! एक सत्वर ! दूसरा स्थगित !! कुछ और बतलाऊँ ?

(इन्द्रसेन खिलखिला कर हँस पड़ता है। तन्वी का हाथ पकड़ लेता है।)

इन्द्रसेन—अनङ्ग मोहिनी मन्जुली, मैं यदि वासनालिप्त होता तो कवियों की उपमाओं की तुम्हारे ऊपर वर्षा कर डालता।

तन्वी—जानते भी हैं कवियों की कुछ उपमाएं कि यों ही बात बना रहे हैं देव ?

इन्द्रसेन—मन्जुली उस दिन मैं तुमसे हार गया था, आज जीत गया। आज हम लोग यहां से उज्जैन की ओर चलदेंगे—

तन्वी—मैं उज्जैन नहीं जाऊँगी, देव।

इन्द्रसेन—(सोचकर) अच्छा। त्रिपुरी यहां पास ही है। यहां के अधिकारी मेरे घनिष्ट मित्र हैं। तुमको यहीं छोड़ जाऊँगा। व्यवस्था स्थापित करने के उपरान्त ही लौटूँगा, और भृगुघाट पर खड़े होकर नर्मदा से तुम्हारे द्वारा, अपने विवाहित जीवन के लिए अशीर्वाद मांगूँगा।

तन्वी—(हँसकर) देव, मेरे द्वारा !

इन्द्रसेन—और नहीं तो किसके द्वारा ?

तन्वी—सुनन्दा को आप साथ ले जायंगे ?

इन्द्रसेन—हां देवी। उनको कालकाचार्य के पास भेजना है।

सातवां दृश्य

(स्थान उज्जैन। समय दिन। विजयी आर्य सेनाएं बाजों के साथ हंस-मयूर पताकाओं को आगे लिए व्यवस्था के साथ पंक्तियां बांधे हुए नगर की सड़कों पर प्रवेश करती हैं। बालक, स्त्रियां और पुरुष फूलों और धानों की वर्षा से सैनिकों और मार्ग को भर देते हैं। सवाद्य नृत्य और गान में संलग्न नर नारियां सैनिकों के स्वागत में आते चले जाते हैं। 'हँस-मयूर की जय, मालवगण की जय, महासेनापति इन्द्रसेन की जय, सात वाहन शातकर्णि की जय', इत्यादि के नाद हो रहे हैं। दुंदुभी बजाने वाला उसी भीड़ भाड़ में आजाता है। वह घोष करता जाता है—

"कल महाकाल के पुण्यक्षेत्र में संध्या के पूर्व महासभा होगी। महत्वपूर्ण विषयों का निर्णय होगा।"

आठवां दृश्य

[स्थान—उज्जैन महाकाल के मंदिर के सामने के मैदान में एक बड़े सजीले वितान और चद्रकों के नीचे सभामंडप। चारों ओर कदली खंभ और घट। चौकियों पर सामने इन्द्रसेन, रामचन्द्रनाग तथा पुरन्दर। दांएं बाएं भिन्न भिन्न गणों तथा जनपदों के नायक और सेनापति। उनके बीच बीच में आंध्र इत्यादि प्रदेशों के प्रतिनिधि बैठे हैं। समय—सन्ध्या के पूर्व। उज्जैन तथा आसपास के नरनारी सभामंडप में। बहुत कोलाहल हो रहा है। चाट और आसन प्रज्ञापक नम्रतापूर्वक प्रबंध कर रहे हैं। इन्द्रसेन बोलने को खड़ा होता है। वह जनता को नमस्कार करता है। 'हंस मयूर की

जय' की तुमुल ध्वनि होती है और फिर सब लोग बिलकुल शांत हो जाते हैं]

इन्द्रसेन—सभा का प्रधान नियुक्त किए जाने के लिए मैं आप सब का कृतज्ञ हूँ। देवियो और बन्धुओ, तेरह वर्ष पहले की खोई हुई अपनी स्वतन्त्रता पाकर आज हम फिर अपने गण तन्त्र की स्थापना के लिए एकत्र हुए हैं। जनता की भूमि जनता को लौटाई है, क्योंकि जनता ही उसकी स्वामी है, राजा उसका स्वामी नहीं। अपने अपने वर्ण में रहकर लोग अपना काम सुख पूर्वक करें। सबको अपने अपने धर्म का अनुसरण करने की स्वाधीनता होगी, केवल यज्ञों में पशुओं का बलिदान न होगा। जनमार्ग सुरक्षित रक्खे जावेंगे जिससे कृषि और उद्योगों की उपज दूर दूर तक आ जा सके। किसी से भी बलात काम, धन या अन्न नहीं लिया जावेगा। ग्राम्य समितियां, शिल्पियों के संघ और श्रेणियां फिर से संगठित हों। नीति और शौर्य के समन्वय से जीवन और मरण को सुन्दर बनाया जाय। (बैठता है।)

आन्ध्र प्रतिनिधि—आन्ध्र-राज सात वाहन शातकर्णि अश्वमेध यज्ञ करना चाहते हैं। उनको किसी से कुछ नहीं चाहिए। अटक भीर पड़ने पर वे केवल अपना नायकत्व उत्तर के गणों और जनपदों का चाहते हैं, और नासिक की कन्दरा में जहां शकों के अहंकारमय शिला लेख हैं वहां वे शकों के समाप्त करने के सम्बन्ध में लेख खुदवाना चाहते हैं। अनुमति के लिए प्रार्थना है। (बैठता है।)

इन्द्रसेन—मेरी समझ में यह प्रार्थना अनुचित नहीं है। शातकर्णि ने नासिक ही के समीप सुराष्ट्र के शकों का उच्छेदन किया, और उनकी सहायता से हमने शक पुलिन्दों को मार भगाया इसलिए उनको लेख उत्कीर्ण कराने का नैसर्गिक अधिकार है। अश्वमेध के लिए भी हम लोगों को

अनुमति देनी चाहिए। मालवगण और यौधेय उनके सहयोगी हैं। उत्तम-भद्रों ने भी हमारा सहयोग स्वीकार किया है और वे शातकर्णि की महानता को भी मानेंगे इसलिए, और इसलिए भी कि कुछ जनपदों के राजा एकतन्त्री बन गए हैं या बनना चाहते हैं जिससे देश फिर संकट में पड़ सकता है, शातकर्णि को अश्वमेध करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

रामचन्द्र—इस सभा में समस्त प्रदेशों के गणपति, गणपक, जनप्रमुख, विद्वान ब्राह्मण, श्रमण और श्रावक उपस्थित हैं। इनके छन्दों* का संग्रह कर लिया जाय। यदि बहुमत इस पक्ष में हो तो अनुमति देदी जाय।

आन्ध्र प्रतिनिधि—उचित है राजन्य।

(आज्ञा प्रज्ञापक, आसन प्रज्ञापक और सभा नियोजक दो भिन्न रंगों की शलाकाओं को उपस्थित जनता में बांटते हैं। प्रत्येक छन्ददाता के हाथ में उन भिन्न रंगों की दो दो शलाकाएं देदी जाती हैं।)

इन्द्रसेन—जो लोग आन्ध्र-स्वराट सातवाहन शातकर्णि को अश्वमेध यज्ञ करने की अनुमति देने के पक्ष में हों, वे लाल रंग की शलाकाएँ शलाका-संग्रहक को दे दें, जो इस प्रस्ताव के विरुद्ध हों, वे हरे रंग की शलाकाएं देदें। इन शलाकाओं की गणना के उपरान्त बहुमत और क्षीण मत का निर्णय किया जायगा। आप अपना छन्द देने में पूर्ण स्वतन्त्र हैं इस बात को दुहराने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं।

(उपस्थित जनता शलाका संग्रहक को अपनी अपनी एक एक शलाका दे देती है। संग्रह के उपरांत शलाकाओं की गणना सभा नियोजक और सभा प्रधान करते हैं। फिर बहुमत का परिणाम सुनाया जाता है)

इन्द्रसेन—सातवाहन शातकर्णि को अश्वमेध यज्ञ करने की अनुमति, बहुमत द्वारा, दी जाती है। (तीन बार कहता है।)

जनता—स्वीकार है।

पुरन्दर—आज इस आनन्द की घड़ी को लाने का श्रेय किसको है? किसने इन दीर्घ वर्षों, चिन्तन और परिश्रम करके, देश को मुक्ति के दर्शन कराए? किसने उन भयावनी, घोर और प्रतिकूल परस्थितियों में से फिर से सतयुग को स्थापित किया? किसने बिखरे हुए और ध्वस्त प्रायः आर्य जनपदों को संगठित किया?

सब के सब—(उत्साह के साथ) आर्य इन्द्रसेन ने।

पुरन्दर—आप ठीक कहते हैं। भगवान का कथन है—जब जब धर्म की ग्लानि होती है, मैं जनता के बीच में उभरता हूँ और जन सुख की स्थापना करता हूँ। मुझ समान कापालिक को भी जिन्होंने शंकर का सौम्य रूप दिखलाया उन आर्य इन्द्रसेन को आजसे 'कृत' कहना चाहिए। कृत अर्थात सतयुगी।

सब—आर्य इन्द्रसेन 'कृत' की जय हो। मालवानां जयः।

पुरन्दर—गर्दभिल्ल को सिंह ने खा लिया और उसकी रानी सुनन्दा अपने भाई कालकाचार्य के पास सुराष्ट्र में पहुँच गई है। कालकाचार्य ने उसका प्रायश्चित करवाके सरस्वती नाम दे दिया है—

रामचन्द्र—सरस्वती नाम तो अच्छा है। सुनन्दा से सरस्वती! परन्तु प्रायश्चित !! हूं। फिर?

पुरन्दर—सुनन्दा अर्थात् सरस्वती फिर श्राविका होगई है। गर्दभिल्ल के पुत्र को हम उज्जैन का राजा नहीं बनाना चाहते हैं। सरस्वती श्राविका होजाने के कारण राज्य कर नहीं सकती। इसलिए मैं प्रस्ताव करता हूँ कि आर्य इन्द्रसेन कृत को उज्जैन और मालव जनपदों का राजा नियुक्त कर दिया जाय।

रामचन्द्र—उचित है। आर्य इन्द्रसेन, गणों की स्वतन्त्रता की रक्षा प्रबलता के साथ करेंगे।

इन्द्रसेन—(**खड़े होकर और हाथ जोड़कर**) आप लोग कृपा पूर्वक मुझको जो श्रद्धा प्रदान कर रहे हैं उसके बोझ से मैं दबा जा रहा हूँ। परन्तु मालवगण सावधान, राजा बनाने की प्रथा को स्थायी कर देना बहुत हानिकारक है। राजा अपनी सन्तान को राज्य देता है। सन्तान तड़क-भड़क और बनावट की भूमि में उपजने और बढ़ने के कारण अयोग्य और परजीवी हो जाती है। जनता रूढ़ियों को नहीं तोड़ पाती है और विपद में बार बार पड़ जाती है इसलिए मुझको राजा बनाकर आप पापी होंगे और संग में मुझको भी पाप का भागी बनायगे। मैं तो नीति और शौर्य के समन्वय के प्रचार में अपना बचा हुआ जीवन बिताऊँगा। वही मेरा राज्य है और हंस-मयूर मेरी पताका। परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि उस साधना के योग से आप अहर्निश उन्नति करें, आपकी स्वाधीनता अटल और अमिट रहे और आप संसार भर को अपने विकास का चमत्कार दें। (**नत मस्तक बैठ जाता है**)

सब—आर्य कुल की जय।

इन्द्रसेन—न, ऐसा मत कहिए। मालवों की जय ही उचित घोष है। और उन जय मन्त्रधारी यौधेयों की जिन्होंने विदेशियों के उड़कर आने वाले पहाड़ों को उत्तर में ही अपने वज्रों से चूर चूर कर दिया; उन मालवों की जिनकी शक्ति और संस्कृति ने शकों की प्रचण्ड आँधी को केवल तेरह वर्ष के राज्य काल के उपरान्त ही सदा के लिए सुला दिया; सातवाहन शतकर्णि के उन आन्ध्रों की जिन्होंने मालवों के साथ मिल कर देश को अभय की जलाञ्जलि दी।

पुरन्दर—मेरा एक प्रस्ताव तो माना ही जाना चाहिए।

सब—कहिए आचार्य।

पुरन्दर—मालवगण की फिर से स्थापना होने के उपलक्ष में कृत नाम के संवत का प्रवर्तन होना चाहिए, और मालवगण का जो कोई भी प्रमुख हुआ करे वह शकों के विध्वन्स की स्मृति में शकारि कहलावे।

सब—अवश्य हो, अवश्य हो। आर्य इसको नहीं रोक सकते। यह हमारे ही विक्रम का रूप है।

इन्द्रसेन—नहीं रोकता हूं मालवगण। तेरह वर्ष की असंख्य यातनाओं के अनन्तर हमारी संस्कृति का सतयुग फिर आया है। उसका संवत चलाइए। और मुद्राओं पर लिखवाइए। मालवानां जय :

सब—स्वस्ति। स्वस्ति।

रामचन्द्र—बन्दी शकों और उस वकुल का क्या किया जाय जिसने आर्य इन्द्रसेन के बध करने का प्रयत्न किया था?

पुरन्दर—कृत ने उनलोगों के बध का निषेध कर दिया है। मेरी समझ में उनको आजन्म कारावास दिया जाय।

इन्द्रसेन—आचार्य, यह भी नहीं होना चाहिए। वकुल धारा का है। इसको उत्तमभद्रों के हाथ सौंप देना चाहिए। वे इसकी देखरेख करते रहेंगे। कदाचित् यह अपने जीवन को अब भी सुधार ले। और शक पन्चनद के उस ओर पहुंचा देना चाहिए।

पुरन्दर—ये फिर उपद्रव करने के लिए भारत भूमि पर आवेंगे।

इन्द्रसेन—हमको अपने भगवान और अपने बाहुबल का भरोसा करना चाहिए। मुझको विश्वास है कि ये भारत का अब नाम नहीं लेंगे।

नवां दृश्य

[स्थान—नर्मदा का तीर। भृगु घाट के निकट। समय—संध्या के पहले। तन्वी का साधारण वेश में प्रवेश।]

तन्वी—नर्मदा के अनन्त जल प्रयात, स्फटिक के चमत्कार को संगीत का प्राण देने वाला गन्धर्व, भाव के रूप में तुम्हारी अप्सरा सदा तुम्हारे अखंड संग में रहती है। तुम सरस और सजीव हो। बोलो, मैं गुप्तचर से नारी, शक से आर्य और नर्तकी से प्रेमोन्मादिनी क्यों हुई ? तुम नहीं बतलाओगे। क्या तुम उनसे भी अधिक निष्ठुर हो ? नहीं, मैं अन्याय कर रही हूँ। रवि की रश्मियों से तुम इन्द्रधनुषों को पकड़ पकड़ लेते हो, तुम निर्मम नहीं हो सकते। और वे ? क्या कह सकती हूँ। सुनती हूँ उन्होंने मालवों का राजा होने से नाहीं करदी है। तब मुझ सदृश क्षुद्र नारी को मन से हटा डालने में उनको कितने क्षण लगेंगे ?

(इन्द्रसेन चुपचाप पीछे से आकर हाथ से उसकी आखें मींच देता है)

इन्द्रसेन—पाषाणों को भी पानी कर देने वाली अप्सरा, प्रपात के संगीत और इन्द्रधनुष को अपना समग्र ध्यान दे देने वाली तन्मयता —

तन्वी— **(हर्ष प्रमत्त होकर)** छोड़िए, छोड़िए आप बड़े छली हैं। मुझको दर्शन लेने दीजिए।

इन्द्रसेन— **(उसके सामने आकर हँसता हुआ)** स्थगित दान के देने और लेने का समय आगया, परन्तु तुमतो इस निर्जीव प्रपात को ही सजीवता देने में लगी हुई हो।

(तन्वी इन्द्रसेन के कन्धे से जा टिकती है आखों में हर्ष के आंसू आजाते हैं।)

तन्वी-- **(अलग होकर)** प्राणनाथ, कहां थे इतने दिनों ? क्यों कोई समाचार नहीं दिया ?

इन्द्रसेन—क्योंकि वैसे इस पवित्र सुन्दर स्थान पर, अश्व को ठोकरें खिलाता और खाता, पेड़ों और पत्तों से पता पूछता, कैसे आता ?

तन्वी—मै त्रिपुरी में कह आई थी।

इन्द्रसेन—अब चलो मैं घोड़े पर बिठा ले चलूंगा।

तन्वी—एक बार अप्सरा का नृत्य देखोगे, देव? (मुस्कराकर) फिर नहीं दिखलाऊँगी।

इन्द्रसेन—उसके लिए ठहर सकता हूँ। अभी प्रकाश है। आगे नृत्य क्यों नहीं देख सकूँगा?

तन्वी - क्योंकि मैं मन्जुली से कृत की कृत्या बनने जा रही हूँ—

इन्द्रसेन—(हँसकर) तुमने मेरा उपनाम सुन लिया!

तन्वी—सुन लिया था। (बाहुओं पर दृष्टि डालकर) खेद है इन गुदनों को न छील सकूँगी।

इन्द्रसेन—खेद की कोई बात नहीं। वे मेरे गौरव है। गौरव के भी सौष्ठव। मन्जुली की मन्जुलता के संस्मरण, तन्वी की सूक्ष्म मोहकता के प्रतीक और मेरी -

तन्वी—(हसकर) और मेरी दृढ़ता के चिन्ह! कह डालिए देव, रुक क्यों गए?

इन्द्रसेन—(मुस्कराकर) आज मेरी पराजय की पराजय है।

तन्वी—अथवा मेरी जय की विजय देव! (नीचा सिर कर लेती है।)

इन्द्रसेन—अब अप्सरा क्या बातों में उलझाने जा रही है!

तन्वी—(सिर उठाकर) नहीं नाथ। यह नर्मदा, यह प्रपात, यह सीकर पुञ्ज एक वरदान मांगने के लिए मुझको विवश कर रहे हैं।

इन्द्रसेन—वरदान मांगने के लिए या वरदान देने के लिए?

तन्वी—उपहास मत करो देव! मुझको इस परम सुन्दर स्थान पर

आज जो कुछ मिला है उसके उपलक्ष में दो मूर्तियाँ बनवा कर खड़ी करना चाहती हूँ। अनुमति देंगे देव ?

इन्द्रसेन—दोनों हाथों। (हँसता है।)

तन्वी—अब मैं गाऊँगी।

इन्द्रसेन—और मैं शुकदेव सा बनकर बैठता हूँ। (बैठ जाता है।)

(तन्वी का गान के साथ नृत्य)

(राग बागेश्वरी)

वाणी ने झंकार जगाई,—
लाज सकुच तज सरिता आई।
फेन फुहार, कुहासा, ध्वनि, ले
चल चल री, जलनिधिसे मिलले,
पवन झकोर संदेसा लाई—
वीणा ने झंकार जगाई।

(गायन के बीच में इन्द्रसेन थोड़े समय तक आंखें मूँदे रहता है, फिर खोल लेता है और मुस्कराता रहता है।)

तन्वी—(गायन की समाप्ति पर) आपने आखें क्यों खोल लीं देव ?

इन्द्रसेन—क्योंकि तुम हृदय में स्थित होते हुए भी आँखों में आ विराजीं; क्योंकि मैं मुक्त हूं, क्योंकि प्रकृति और पुरुष अपने देश की स्वाधीनता को अमर रखेंगे।

दोनों—(गाते हुए) अमर हो स्वाधीनता इस देश की।

(यवनिका पतन)

लेखक के सम्बन्ध में।

दिसम्बर' ४७ में युक्तप्रांत के स्वास्थ्य और स्वायत्त शासन-मंत्री माननीय श्री आत्माराम गोविन्द जी खेर ने वर्मा जी के 'काश्मीर का कांटा'—नाटक देखकर कहा था—'वर्मा जी ने हिन्दी की सेवा करके भारत का माथा ऊंचा किया है। उनका हिन्दी में विशिष्ठ स्थान है। परन्तु वे जितने बड़े साधक हैं, कम लोग जानते हैं, उतने बड़े मानव भी हैं।' वर्मा जी मानवता की साधना ही उनकी विभिन्न कृतियों में भिन्न भिन्न रूप में झांकती है।

इतिहास, कला, पुरातत्व-विज्ञान, मनोविज्ञान, साहित्य, मूर्तिकला एवम् चित्रकला में वर्मा जी की विशेष रुचि है। संगीत में सितार, और खेलों में शिकार, व्यसन है।

'गढ़कुण्डार' आपका सर्व प्रथम उपन्यास है। उसे उनके परम मित्र स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी ने पढ़ा और पढ़ने पर वर्मा जी को छाती से चिपटाकर कहा था—'ईश्वर की बड़ी कृपा है, जो तुम्हें वकालत के गाउन से उसने बचा लिया। 'वाल्टर स्काट' के दर्शन हिन्दी में मिले।' आज आप निर्विवाद हिंदी के उपन्यास सम्राट हैं।

गढ़कुण्डार १९२८ में दो माह में लिखा था। उसी वर्ष लगन, संगम, प्रत्यागत, कुण्डली चक्र, प्रेम की भेंट, हृदय की हिलोर लिखे गये। १९३० में विराटा की पद्मिनी पूर्ण करने के बाद ५ वर्ष तक आपने विश्राम किया। १९३९ में 'धीरे धीरे' व्यंग लिखा। १९४२-४४ में 'कभी न कभी' तथा 'मुसाहिबजू' उपन्यास लिखे।

१९४६–४७ में 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' 'कचनार' 'अचल–मेरा कोई' 'सत्रह सौ उन्तीस' 'माधव जी सिंधिया' 'टूटे कांटे' 'आनंदघन' उपन्यास तथा 'हंसमयूर' 'राखी की लाज' 'पायल' 'बांस की फांस' 'मङ्गल मोहन' 'फूलों की बोली' 'कबतक' 'नीलकंठ' 'काश्मीर का कांटा' 'झांसी की रानी' ओर 'पीलेहाथ' नाटक एवं 'हरसिंगार' 'दबे पांव' और 'कलाकार का दण्ड' कहानी संग्रह लिखे।

स्कैच लिखने में वर्मा जी दक्ष हैं। शिकारी कहानिया भी आपने लिखी हैं। नारी–मनोविज्ञान के आप कुशल चितेरे हैं। आपके चरित्र--चित्रण में उबा देने वाली समानता नहीं--प्रत्युत स्वाभाविक विभिन्नता रहती है।

१९४८ से वर्मा जी ५९ वें वर्ष में प्रवेश कर चुके हैं। मऊ--रानीपुर के जन्मे हैं और झांसी के निवासी। एकान्त आपको अधिक प्रिय है। आपका अधिक समय अब भी एकांत में व्यतीत होता है और तभी कुछ लिख पाते हैं।

'मंजरी' से उद्धृत

वर्मा जी की कृतियों पर

कुछ सम्मतियां

डा० अमरनाथ झा—वाइस चान्सलर काशी विश्वविद्यालय—
'वर्मा जी की कृति प्रशंसा की अपेक्षा नहीं रखती। आजके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार वे हैं।'

डा० धीरेंद्र वर्मा—यह निश्चित है कि हिन्दी के यह सर्वश्रेष्ठ मौलिक लेखक हैं।

डा० श्री बाबूराम सक्सेना—हिन्दी साहित्यकारों में वर्मा जी का स्थान बहुत ऊँचा है। उपन्यासकार तो उनकी तुलना का कोई है ही नहीं।

श्री वियोगी हरि—साहित्यकार वृन्दावनलाल वर्मा को पाकर हमारे भारत राष्ट्र का मस्तक ऊँचा हुआ है।

माननीय श्री पंतजी—प्रधान मंत्री, यू० पी०—वृन्दावनलाल जी वर्मा का ऐतिहासिक उपन्यासकारों में विशिष्ट स्थान है।

N. C. MEHTA, I. C. S., Chief Commissioner, Himachal Pradesh, Simla writes :— "I have read some of the books by Shri Brindaban Lal Varma with great pleasure. I have always found complete mastery of the language and unusual power of vivid description. His knowledge of Bundelkhand, its people and its folklore is unique and he deserves the warmest congratulations for putting before the public this exceptional knowledge so efficiently and vividly. ....."

प्रेस में—

कलाकार का दण्ड

(कहानी संग्रह)

मूल्य लगभग २॥) रु०

वृन्दावनलाल वर्मा-साहित्य

प्रकाशित

उपन्यास

लक्ष्मीबाई ६)
कचनार ४॥)
मुसाहिबजू १॥)
अचल मेरा कोई ३।।।)
गढ़कुंडार ४॥)
विराटा की पद्मिनी ५)
कुण्डली चक्र २)
कभी न कभी २॥)
प्रेम की भेट १॥)
प्रत्यागत १।।।)
हृदय की हिलोर १)

नाटक

राखी की लाज १।)
झांसी की रानी २)
काश्मीर का कांटा १)
फूलों की बोली १।)
बांस की फांस १)
लो भाई पंचो लो ।।।)

प्रेस में

उपन्यास

माधवजी सिंधिया
सत्रह सौ उन्तीस
आनंदघन
टूटे कांटे

कहानी

हरसिंगार
दबे पांव
कलाकार का दण्ड

नाटक

हंस-मयूर
मगलसूत्र
कब तक
नील कण्ठ
पीले हाथ
पायल

हमारा आगामी प्रकाशन—

"मंगलसूत्र"

अद्वितीय रोचक और कलात्मक नाटक

मयूर-प्रकाशन, मानिक चौक, झांसी।

अशुद्धि-शोधन

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ
ओठों	होठों	२, ४६, ८१
विद्याओं के पीठ को	विद्याओं के पीठ, को	४
चर्यव्यवती	चर्मण्यवती	५
नदियों के	नदियों की	५
हिंसा नहीं हो सकता	हिंसा नहीं हो सकती	६
सुनन्दा का झांकते हुए	सुनन्दा को झांकते हुए	[illegible]
हमलाग	हमलोग	९
दामिनि द्यति	दामिनि द्युति	१३
कलस	कलश	१३
भ स्नान करे	भी स्नान करे	१६
नाशमान	नाशवान	१६
द्रावक	श्रावक	१९
औषधि	ओषधि	२०
सिंगा बजाता है सब	सिंगा बजाता है, सब	२०
बध	वध	२५ ३०, ९८, ९९, १०४, १०५, १२८, १३३, १५०
बन्दी	वन्दी	२८, २९, ३०, ३२, १४२
जीवित काटकर	जीवित ही काटकर	२९
सम्भवित	सम्भवतः	२८

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ
अबाध्य	अबाध्य	२९
ओगों को	लोगों को	३३
गर्दभिक	गर्दभिल्ल	३३
अहिंसा व्रत	अहिंसा व्रत	३६
उन कक्ष	उस कक्ष	३९
अर्द्धांग	अर्द्धांग	४५
निराधार	निर्धार	४७
तैल	तेल	४९
नारायण नारायण	नारायण, नारायण	४९
भस्मि	भस्म	५०
दूर । नीचे ।	दूर, नीचे	५७
कादम्ब		६२
तन्वा	तन्वी	६७
बासना	वासना	७६
उपत्काओं	उपत्यकाओं	७७
नलपूर की ओर ध्यान	नलपूर की ओर से ध्यान	७८
उद्यान में के	उद्यान के	७८
बकुल	वकुल	८०
भलिभांति	भलीभांति	८२
निशिद्ध	निषिद्ध	८३
बिलकुल उठेगी	बिलबिला उठेगी	८६
सीखलूँगी सब	सीखलूँगी तब	८७
तीक्ष्ण अनि	तीक्ष्ण अनी	९०
मत-प्रचार	मत-प्रचारक	९५

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ
सिर के वालों	सिर के बालों	९६, ९७
दीन वन्धु	दीन बन्धु	९७
वलिष्ठ	बलिष्ठ	१०३
वाधक	बाधक	१०६
धौधेय	यौधेय	१०८
कन्जुलिका	मन्जुलिका	१०९
आगे । जा बैठते हैं	आगे जा बैठते हैं	१०९
बसन्त	वसन्त	११०, ११२
भाव भंगियाओं	भाव भंगियों	११५
बैठे हुए दर्शक	बैठे हुए भारवाहक दर्शक	११६
वतुलाकार	वर्तुलाकार	११७
नाकट	नाटक	११८
उदीप्त	उद्दीप्त	११८
प्राकृति	प्रकृति	११९
निर्देष	निर्देश	११९
रूठ गए	रह गए	१२१
यथा सामर्थ	यथा सामर्थ्य	१२३
विरुद्ध सांस	निरुद्ध सांस	१२४
भभन	भवन	१२६
अलिंगन	आलिंगन	१२८
करन	करना	१३१
बोतली है	बोलती है	१३५
पताका सामने लाया जाता है	पताका सामने लाई जाती है	१५१

शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ

१४४ पृष्ठ के नीचे दृश्य की समाप्ति पर (प्रस्थान)।

१४५ पृष्ठ पर सातवें दृश्य में गायन के लिए

गीत

सुमन झिलमिल रश्मियों से खिल गया,
मुदित हो परिमल कमल में हिल गया;
गगन में आभा पसर कर रम गई,
सत्य, शिव, सुन्दर हमें फिर मिल गया।

शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ
आयोग्य	अयोग्य	
आपका	आपकी	
इन्तसेन	इन्द्रसेन	
शाक पञ्चनद	शकों को	
वाला गन्धर्व	वाले गन्धर्व	
भाव	भाप	
वाणी ने	वीणा ने	